गां
धी
जी

खण्ड दस

अहिंसा

(तृतीय भाग)



सम्पादक-मण्डल

कमलापति त्रिपाठी (प्रधान सम्पादक)
कृष्णदेवप्रसाद गौड़
काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'
करुणापति त्रिपाठी
विश्वनाथ शर्मा (प्रबंध सम्पादक)

मूल्य डेढ़ रुपया

(प्रथम संस्करण : जून, १९४९)

प्रकाशक
जयनाथ शर्मा
व्यवस्थापक
काशी विद्यापीठ प्रकाशन विभाग
बनारस छावनी

मुद्रक
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव
अध्यक्ष
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट
काशी

सूची

प्रकाशकका वक्तव्य

'गांधीजी' ग्रन्थमालाका यह छठवाँ प्रकाशन ग्रंथमालाके दसवें खंड अहिंसाका तृतीय भाग है। अहिंसाके सिद्धान्तोंपर पूज्य बापूकी लेखनीसे जो अमूल्य विचारधारा जगतको प्राप्त हुई है उसका यह तृतीय संग्रह है। आशा है कि एक और भागमें अहिंसा सम्बन्धी लेख समाप्त हो जायंगे। इस भागके संकलन तथा संपादनमें श्री लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय', श्री विद्यारण्य शर्मा तथा श्रीबागेश्वरीप्रसादसे बड़ी सहायता मिली है। हम तीनों सज्जनोंके आभारी हैं।

काशीके प्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्ता तथा गांधीभक्त श्री रामसूरत मिश्र, श्री कृष्णदेव उपाध्याय, स्वर्गीय श्री बैजनाथ केडिया तथा कारमाइकल पुस्तकालयके संग्रहोंसे हमें बड़ी सहायता मिली है। हम उनके भी आभारी हैं।

इस भागके प्रकाशनकी अनुमति देकर श्री जीवनजी डाह्याभाई देसाई (व्यवस्थापक-ट्रस्टी, 'नवजीवन' ट्रस्ट, अहमदाबाद) ने जो कृपा की है उसके लिये हम कृतज्ञ हैं।

'गांधीजी'ग्रन्थमालामें अबतक भारतीय नेताओंकी श्रद्धाञ्जलियाँ दो भाग, अहिंसा संबन्धी लेख तीन भाग, कवियोंकी श्रद्धाञ्जलियाँ एक भाग कुल छः खण्ड प्रकाशित हुए हैं। हमने यह क्रम रखा है कि जिस खंडकी सामग्री एकत्र हो जाती है वह खंड प्रकाशित कर दिया जाता है इस कारण खंडोंके विज्ञापित क्रममें व्यतिक्रम पड़ता है किन्तु खंडोंकी क्रमसंख्या वही रहती है जो पहिलेसे निश्चित है। क्रमशः सब खंड पूर्ण किये जायंगे।

हमें हर्ष है कि ग्रंथमालाके अबतक प्रकाशित खंडोंका प्रथम संस्करण बिलकुल समाप्त होगया। अब द्वितीय संशोधित संस्करण प्रकाशित होरहा है। इस आशातीत प्रचारसे हमें जो बल, उत्साह तथा साहस मिल रहा है उससे हमें पूरा विश्वास है कि हम गांधी साहित्यके प्रसार और प्रचारके शुभ अनुष्ठानमें सफल होंगे।

आमुख

अहिंसाका तीसरा खंड हम पाठकोंके सम्मुख उपस्थित कर रहे हैं। मानव जीवनका कोई पक्ष, कोई अंश ऐसा नहीं है जिसे महात्माजीने अहिंसा-की दृष्टिसे न देखा हो। जीवनकी सभी समस्याओंका सुलझाव उन्होंने अहिंसासे ही किया था। इन लेखोंमें उन्होंने अनेक कठिनाइयोंपर इसी दृष्टिसे विचार किया है। देशभरसे स्त्री-पुरुष उनके पास पत्र लिखते थे और उनसे परामर्श करते थे और हरिजन द्वारा वे उनकी कठिनाइयोंका उत्तर दिया करते थे।

महात्माजीकी अहिंसाकी भावना जैसा प्रायः सभी जानते हैं, देखनेमें अव्यावहारिक और आदर्श स्वरूप समझी जाती थी। लोग समझते थे कि पढ़ने और सुननेमें वह भली लगती है किन्तु जब प्रतिदिनकी घटनाओंमें उसका उपयोग करना पड़ता था तब लोग समझते थे कि उसका प्रयोग करना असंभव है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। इन लेखोंको पढ़नेसे ज्ञात होता है कि अहिंसाकी भावना उत्पन्न करनेके लिये विशेष मनःस्थितिकी आवश्यकता है और जब वह मनःस्थिति उत्पन्न हो गयी तब सभी कठिनाइयोंका सामना किया जा सकता है और उनपर मनुष्य विजय प्राप्त कर सकता है। यह मनःस्थिति कोई असंभव बात नहीं है यही इन लेखोंसे स्पष्ट होता है। मनुष्यको अपने आचरणकी धारा बदल देनी होगी। निम्न कोटिके विचारोंको मनमें दबाये हुए वासनाओंको हृदयमें रखे हुए, अनाचारका पोषण करते हुए अहिंसाकी बात करना बेकार है। अनेक संवाद-दाताओंने शंका की है कि अमुक बातमें अहिंसा को सफलता नहीं मिल सकती, अथवा अमुक स्थलपर अहिंसा अव्यावहारिक है। महात्माजीका कहना है कि इस प्रकार सोचना अपनी दुर्बलताओंको न देखना है। दुर्बलताओंको साथ रखकर अहिंसाकी भावना हम नहीं जागृत कर सकते। उनका स्पष्ट कहना है कि जो लोग बुराइयोंका सामना अहिंसासे करनेमें असमर्थ हैं वह हिंसासे करें, किंतु यह औषधि क्षणिक ही हो सकती है। पूर्णरूपसे कुकृत्योंके विनाशका एक मात्र उपाय अहिंसा ही है।

व्यक्तिगत जीवनमें ही नहीं, राष्ट्रों और जातियोंके लिये भी उन्होंने अहिंसाको ही सर्वश्रेष्ठ उपाय माना है। उनका यह विचार उस समय भी नहीं डिगा जब हिटलरकी तोपें यूरोपकी अनेक जातियोंको धराशायी कर रही

थी। और जगतका इधर इतने दिनोंका इतिहास बता रहा है कि महात्मा गांधीका अहिंसाका सिद्धांत ही व्यावहारिक और उपादेय है। यदि सारी संस्कृतिको नष्ट होनेसे बचाना है तो महात्माजीकी अहिंसाकी भावनाका ही जगतमें प्रचार करना उचित होगा।

महात्माजीके जीवनमें ही इस जड़वादके युगमें अहिंसाकी ओर लोगोंका कम ध्यान था। लोग उसे केवल दार्शनिक सिद्धान्त समझ रहे थे यद्यपि महात्माजीने सफलतापूर्वक अपने जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें इसका उपयोग किया। आज उनके गत हो जानेपर तो हम लोग अहिंसाको प्रायः भूल गये हैं और हमारी सारी विपत्तियों तथा कठिनाइयोंकी मूलमें यही है। इसलिये इस समय इस बातकी अधिक अपेक्षा है कि हम अहिंसाके सिद्धांतोंका अध्ययन करें, मनन करें, प्रचार करें। हमें पूर्ण आशा है कि गांधीजी अंश मालाके ये खंड देश तथा संसारके कल्याणमें सहायक होंगे।

❀



राष्ट्रपिता

बड़े-बड़े राष्ट्रोंके लिए अहिंसा

चेकोस्लोवाकियाके सम्बन्धमें लिखे हुए मेरे हालके लेखोंपर जो आलोचनाएँ हुई हैं, उनमें से एक चीजका जवाब देनेकी जरूरत मालूम पड़ती है।

कुछ आलोचकोंका कहना है कि चेकोंको मैंने जो उपाय सुझाया वह तुलनात्मक रूपसे कमजोर है। क्योंकि अगर वह चेकोस्लोवाकिया जैसे छोटे राष्ट्रोंके लिये है, और इंगलैण्ड, फ्रांस या अमेरिका जैसे बड़े-बड़े राष्ट्रोंके लिये नहीं, तो यदि उसका कोई महत्व भी हो तो भी वह अधिक मूल्यवान नहीं है।

लेकिन मेरे आलोचक मेरे लेखको फिरसे पढ़ें तो वे देखेंगे कि मैंने बड़े राष्ट्रोंको जो यह बात नहीं सुझाई इसका कारण उन देशोंका बड़ा होना या दूसरे शब्दोंमें मेरी भीरुता तो है ही, पर इसकी एक और भी खास वजह है। बात यह है कि वे मुसीबतजदा नहीं थे और इसलिये उन्हें किसी उपायकी भी जरूरत नहीं थी। डाक्टरी भाषामें कहूँ तो चेकोस्लोवाकियाकी तरह रोगग्रस्त नहीं थे। उनके अस्तित्वको चेकोस्लोवाकियाकी तरह कोई खतरा नहीं था। इसलिये महान राष्ट्रोंसे मैं कोई बात कहता तो वह 'भैंसके आगे बीन बजाने' जैसा ही निष्फल होती।

अनुभवसे मुझे यह भी मालूम हुआ कि सद्गुणोंकी खातिर लोग सद्गुणी मुश्किलसे ही बनते हैं। वह तो आवश्यकतावश सद्गुणी बनते हैं। परिस्थितियोंके दबावसे भी कोई व्यक्ति अच्छा बने तो उसमें कोई बुराई नहीं, लेकिन अच्छाईके लिये अच्छा बनना उससे श्रेष्ठ है।

चेकोंके सामने सिवा इसके कोई उपाय ही न था कि या तो वे शांतिके साथ जर्मनीके आगे सिर झुका दें या अकेले ही लड़कर निश्चितरूपसे विनाशका खतरा उठायें। ऐसे अवसरपर मुझ जैसेके लिये यह आवश्यक मालूम हुआ कि वह उपाय पेश करूँ जिसने बहुत कुछ ऐसी ही परिस्थितियोंमें अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी है। चेकोंसे मैंने जो कुछ निवेदन किया, मेरी रायमें बड़े राष्ट्रोंके लिये भी वह उतना ही मौजूं है।

हाँ, मेरे आलोचक यह पूछ सकते हैं जबतक हिन्दुस्तानमें ही मैं अहिंसाकी सौ फी सदी सफलता करके न बतला दूँ तबतक किसी पश्चिमी राष्ट्रसे उसके न कहनेकी जो कैद खुद ही अपने ऊपर लगा रक्खी है, उसके बाहर मैं क्यों गया? और खासकर अब, जब कि मुझे इस बातमें गम्भीर सन्देह होने लगा है कि कांग्रेसजन अहिंसाके अपने ध्येय या नीतिपर वस्तुतः कायम हैं या नहीं? जब मैंने यह लेख लिखा तब कांग्रेसकी वर्तमान अनिश्चित स्थिति और अपनी मर्यादाका जरूर ध्यान था। लेकिन अहिंसात्मक उपायमें मेरा विश्वास हमेशाकी तरह दृढ़ था और मुझे ऐसा लगा कि ऐसे आड़े वक्त मैं चेकोंको अहिंसात्मक उपाय ग्रहण करनेको न कहूँ तो यह मेरी कायरता होगी। क्योंकि ऐसे करोड़ों आदमियोंके लिये, जो अनुशासनहीन हैं और अभी हालमें पहलेतक उसके आदी नहीं थे, जो बात अंतमें शायद असंभव साबित हो, वह

सम्मिलित रूपसे कष्ट-सहनके लायक छोटे और अनुशासनयुक्त राष्ट्रके लिये सम्भव हो सकती है। मुझे ऐसा विश्वास रखनेका कोई हक नहीं है कि हिन्दुस्तानके अलावा और कोई राष्ट्र अहिंसात्मक कार्यके लिये उपयुक्त नहीं है। अब मैं जरूर कबूल करूँगा कि मेरा यह विश्वास रहा है और अब भी है कि अहिंसात्मक उपाय द्वारा अपनी स्वतंत्रता फिरसे प्राप्त करनेके लिये हिन्दुस्तान ही सबसे उपयुक्त राष्ट्र है। इससे विपरीत आसारोंके बावजूद, मुझे इस बातकी उम्मीद है कि हमारा जनसमुदाय, जो कांग्रेससे भी बड़ा है, केवल अहिंसात्मक कार्य ही अपनायेगा। क्योंकि भूमण्डलके समस्त राष्ट्रोंमें हमीं ऐसे कामके लिये सबसे अधिक तैयार हैं। लेकिन जब इस उपायके तत्काल अमलका मामला हमारे सामने आया, तो चेकोंको उसे स्वीकार करनेके लिये कहे बगैर मैं न रह सका।

अगर बड़े-बड़े राष्ट्र चाहें, तो चाहे जिस किसी दिन इसको अपनाकर गौरव ही नहीं बल्कि भावी पीढ़ियोंकी शाश्वत कृतज्ञता भी प्राप्त कर सकते हैं। अगर वे या उनमेंसे कुछ विनाशके भयको छोड़कर निःशस्त्र हो जायँ तो बाकी सब फिरसे अक्लमंद बननेमें अपने आप सहायक होंगे। लेकिन उस हालतमें इन बड़े-बड़े राष्ट्रोंको साम्राज्यवादी महात्वाकांक्षों तथा भूमण्डलके असभ्य तथा अर्द्ध-सभ्य कहे जानेवाले राष्ट्रोंके शोषणको छोड़कर अपने जीवन-क्रमको सुधारना पड़ेगा। इसका अर्थ हुआ पूर्ण-क्रांति। पर बड़े-बड़े राष्ट्र साधारण रूपमें विजयपर विजय प्राप्त करनेकी अपनी धारणाओंको छोड़कर जिस रास्तेपर चल रहे हैं, उससे विपरीत रास्तेपर वे एकदम नहीं चल सकते। लेकिन चमत्कार पहले भी हुए हैं और इस बिलकुल नीरस जमानेमें भी हो सकते हैं। गलतीको सुधारनेकी ईश्वरकी शक्तिको भला कौन सीमित कर सकता है। एक बात निश्चित है। शस्त्रास्त्र बढ़ानेकी यह उन्मत्त दौड़ अगर जारी रही, तो उसके फलस्वरूप ऐसा जन-संहार होना लाजिमी है जैसा इतिहासमें पहले कभी नहीं हुआ। कोई विजयी बाकी रहा तो जो राष्ट्र विजयी होगा उसकी विजय ही उसके जीते-जी मृत्यु बन जायगी इस निश्चित विनाशसे बचनेका इसके सिवा कोई रास्ता नहीं है कि अहिंसात्मक उपायको, उसके समस्त फलितार्थोंको साहसपूर्वक स्वीकार कर लिया जाय। प्रजातंत्र और हिंसाका मेल नहीं बैठ सकता। जो राज्य नामके लिये आज प्रजातंत्री हैं उन्हें या तो स्पष्ट रूपसे तानाशाहीका हामी हो जाना चाहिये, या अगर उन्हें सचमुच प्रजातंत्री बनना है तो, उन्हें साहसके साथ अहिंसक बन जाना चाहिये। यह कहना बिलकुल वाहियात है कि अहिंसाका पालन केवल व्यक्ति ही कर सकते हैं, राष्ट्र हर्गिज नहीं, जो व्यक्तियोंसे बने हैं।

हरिजन सेवक
१२ नवम्बर, १९३८

आत्म-रक्षा कैसे करें ?

पंजाबसे एक कालेजकी लड़कीका एक अत्यंत हृदयस्पर्शी पत्र करीबन दो महीनेसे मेरी फाइलमें पड़ा हुआ है। इस लड़कीके प्रश्नका जवाब जो अभीतक नहीं दिया इसमें समयके अभावका तो एक बहाना था। किसी न किसी तरह इस कामसे अपनेको मैं बचा रहा था, हालाँकि मैं जानता था कि इस प्रश्नका क्या जवाब देना चाहिये। इस बीचमें मुझे एक और पत्र मिला। यह पत्र एक ऐसी बहनका लिखा हुआ है, जो बहुत अनुभव रखती है। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि कालेजकी इस लड़कीको जो यह बहुत वास्तविक कठिनाई है, उसका मुकाबला करना मेरा कर्त्तव्य है, और इसकी अब मैं और अधिक दिनों तक उपेक्षा नहीं कर सकता। पत्र उसने शुद्ध हिन्दुस्तानीमें लिखा है, जिसका एक भाग मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूँ—

"लड़कियों और वयस्क स्त्रियों के सामने उनकी इच्छाके विरुद्ध, ऐसे अवसर आ जाया करते हैं, जब उन्हें अकेली जानेकी हिम्मत करनी पड़ती है—या तो उन्हें एक ही शहरमें एक जगहसे दूसरी जगह जाना होता है या एक शहरसे दूसरे शहरको। और जब वे इस तरह अकेली होती हैं, तब गंदी मनोवृत्तिवाले लोग उन्हें तंग किया करते हैं। वे उस वक्त अनुचित और अश्लील भाषा तकका प्रयोग करते हैं। अगर भय उन्हें रोकता नहीं है तो इससे भी आगे बढ़नेमें उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती। मैं यह जानना चाहती हूँ कि अहिंसा ऐसे मौकोंपर क्या काम दे सकती है। हिंसाका उपयोग तो है ही। अगर किसी लड़की या स्त्रीमें काफी हिम्मत हो, तो उसके पास जो भी साधन होंगे उन्हें वह काममें लायेगी और बदमाशोंको एक बार सबक सिखा देगी। वे कमसे कम हंगामा तो मचा सकती हैं, जिससे कि लोगोंका ध्यान आकर्षित हो जाय, और गुंडे वहाँसे भाग जायें। लेकिन मैं यह जानती हूँ कि इसके परिणाम-स्वरूप विपत्ति सिर्फ टल जायगी, यह कोई स्थायी इलाज नहीं है। अशिष्ट व्यवहार करनेवाले लोगोंका अगर पता है तो मुझे विश्वास है कि उन्हें अगर समझाया जाय, तो वे आपकी प्रेम और नम्रताकी बातें सुनेंगे। पर उस आदमीके लिए आप क्या कहेंगे, जो साइकिलपर चढ़ा हुआ किसी लड़की या स्त्रीको देखकर, जिसके साथ कोई मर्द साथी नहीं है, गंदी भाषाका प्रयोग करता है? उसको दलील देकर समझानेका आपको मौका नहीं। आपकी उससे फिरसे मिलनेकी कोई सम्भावना नहीं। हो सकता है कि आप उसे पहचाने भी नहीं। आप उसका पता भी नहीं जानते। ऐसी परिस्थितियोंमें वह बेचारी लड़की या स्त्री क्या करे? मैं अपना ही उदाहरण देकर आपको अपना अनुभव बताती हूँ। २६ अक्तूबरकी रातकी बात है। मैं अपनी एक सहेलीके साथ ७–३० बजेके करीब एक खास कामसे जा रही थी। उस वक्त किसी मर्द साथीको ले जाना नामुमकिन था, और काम इतना जरूरी था कि टाला नहीं जा सकता था। रास्तेमें एक सिक्ख युवक साइकिलपर जा रहा था। वह कुछ गुन-गुनाता जाता था। जबतक हम सुन सके, उसने गुनगुनाना जारी रखा। हमें यह मालूम था कि वह हमें लक्ष करके ही गुन-गुना रहा है। हमें उसकी यह हरकत बहुत नागवार मालूम हुई। सड़कपर कोई चहल-पहल

नहीं थी। हमारे चन्द कदम जानेके बाद वह लौट पड़ा। हम उसे फौरन पहचान गये, हालाँकि वह अब भी हमसे खासे फासलेपर था। उसने हमारी तरफ साइकिल घुमायी। ईश्वर जाने, उसका इरादा उतरनेका था, या सिर्फ यूँही हमारे पाससे गुजरनेका। हमें ऐसा लगा कि हम खतरेमें हैं। हमें अपनी शारीरिक बहादुरीमें विश्वास नहीं था। मैं एक औसत लड़कीके मुकाबले शरीरसे कमजोर हूँ। लेकिन मेरे हाथमें एक बड़ी-सी किताब थी। यकायक किसी तरह मेरे अन्दर हिम्मत आ गयी। साइकिलकी तरफ मैंने उस किताबको जोरसे मारा और चिल्ला कर कहा "चुहलबाजी करनेकी तू फिर हिम्मत करेगा?" वह मुश्किलसे अपनेको संभाल सका, और साइकिलकी रफ्तार बढ़ा वहांसे रफूचक्कर हो गया। अब अगर मैंने उसकी साइकिलकी तरफ किताब जोरसे न मारी होती तो वह अन्ततक इसी तरह अपनी गंदी भाषासे हमें तंग करता जाता। यह तो एक मामूली, बल्कि नगण्य-सी घटना है, पर मैं चाहती हूँ कि आप लाहौर आते और हम हतभागिनी लड़कियोंकी दास्तान खुद अपने कानों सुनते। आप निश्चय ही इस समस्याका ठीक-ठीक हल ढूँढ सकते हैं। सबसे पहले आप मुझे यह बतायें कि ऊपर जिन परिस्थितियोंका वर्णन मैंने किया है उनमें लड़कियाँ अहिंसाके सिद्धान्तका प्रयोग किस तरह कर सकती हैं। और कैसे अपने आपको बचा सकती हैं। दूसरे स्त्रियोंको अपमानित करनेकी जिन युवकोंमें यह बहुत बुरी आदत पड़ गयी है उनको सुधारनेका क्या उपाय है? आप यह उपाय न सुझाइयेगा कि हमें उस नयी पीढ़ीके आनेतक इंतजार करना चाहिये और तबतक हम इस अपमानको चुपचाप बर्दाश्त करते रहें, जिस पीढ़ीने बचपनसे ही स्त्रियोंके साथ भद्रोचित व्यवहार करनेकी शिक्षा पायी होगी। सरकारकी या तो इस सामाजिक बुराईका मुकाबला करनेकी इच्छा नहीं या ऐसा करनेमें वह असमर्थ है। और हमारे बड़े-बड़े नेताओंके पास ऐसे प्रश्नके लिये वक्त नहीं। कुछ जब सुनते हैं कि किसी लड़कीने अशिष्टतासे पेश आनेवाले नवयुवककी अच्छी तरहसे मरम्मत कर दी है, तो कहते हैं 'शाबाश, ऐसा ही सब लड़कियोंको करना चाहिये।' कभी-कभी किसी नेताको हम विद्यार्थियोंके ऐसे दुर्व्यवहारके खिलाफ छटादार भाषण करते हुए पाते हैं। मगर ऐसा कोई नजर नहीं आता, जो इस गम्भीर समस्याका हल निकालनेके लिये निरंतर प्रयत्नशील हो। आपको यह जानकर कष्ट और आश्चर्य होगा कि दीवाली और ऐसे ही दूसरे त्यौहारोंपर इस किस्मकी चेतावनीकी नोटिसें निकला करती हैं कि रोशनी देखनेके लिये औरतोंको घरोंसे बाहर नहीं निकलना चाहिये! इसी एक बातसे आप जान सकते हैं कि दुनियाके इस हिस्सेमें हम किस कदर मुसीबतोंमें फँसी हुई हैं। ऐसी-ऐसी नोटिसोंको जो लिखते हैं न तो वे ही कुछ शर्म खाते हैं, और न पढ़नेवाले ही कि ऐसी चेतावनियाँ क्या उन्हें निकालनी चाहिये?"

एक दूसरी पंजाबी लड़कीको यह पत्र मैंने पढ़नेके लिये दिया था। उसने भी अपने कालेज-जीवनके निजी अनुभवके आधारपर इस घटनाका समर्थन किया। उसने मुझे बताया कि मेरे संवाददाताने जो कुछ लिखा है, बहुत-सी लड़कियोंका अनुभव वैसा ही होता है।

एक और अनुभवी महिलाने लखनऊकी अपनी विद्यार्थिनी मित्रोंके अनुभव लिखे हैं। सिनेमा, थियेटरोंमें उनकी पिछली लाइनमें बैठे हुए लड़के उन्हें दिक करते हैं और उनके

लिये जैसी भाषाका प्रयोग करते हैं, उसे मैं अश्लीलके सिवा और कोई नाम नहीं दे सकता। उन लड़कियोंके साथ किये जानेवाले भद्दे मजाक भी पत्र-लेखिकाने मुझे लिखे हैं, लेकिन मैं उन्हें उद्‌धृत नहीं कर सकता।

अगर सिर्फ तात्कालिक निजी रक्षाका सवाल हो,तो इसमें सन्देह नहीं कि उस लड़कीने जो अपनेको शारीरिक दृष्टिसे कमजोर बताती है, जो इलाज, साइकिल सवारपर जोरसे किताब मारकर किया, वह बिलकुल ठीक है। यह बहुत पुराना इलाज है। मैं 'हरिजन' में पहले भी लिख चुका हूँ कि यदि कोई व्यक्ति जबर्दस्ती करनेपर उतारू होना चाहता है, तो उसके रास्तेमें शारीरिक कमजोरी भी रुकावट नहीं डालती, भले ही उसके मुकाबलेमें शारीरिक दृष्टिसे विरोधी बहुत बलवान हो। और हम यह भली-भाँति जानते हैं कि आजकल तो जिस्मानी ताकत इस्तेमाल करनेके इतने ज्यादा तरीके ईजाद हो चुके हैं कि एक छोटी, लेकिन काफी समझदार लड़की किसीकी हत्या और विनाशतक कर सकती है। जिस परिस्थितिका जिक्र पत्र-लेखिकाने किया है, वैसी परिस्थितियोंमें लड़कियोंको आत्मरक्षाके तरीके सिखानेका रिवाज आजकल बढ़ रहा है। लेकिन लड़की यह भी खूब समझती है कि भले वह उस क्षण आत्मरक्षाके हथियारके तौरपर अपने हाथकी किताब मारकर बच गयी हो, लेकिन इस बढ़ती हुई बुराईका यह कोई असली इलाज नहीं है। भद्दे या अश्लील मजाकके कारण बहुत घबड़ाने या डरनेकी जरूरत नहीं, लेकिन इनकी ओरसे आँख मूँद लेना भी ठीक नहीं। ऐसे सब मामले अखबारोंमें छपा देने चाहिये। ठीक-ठीक मालूम होनेपर शरारतियोंके नाम भी अखबारोंमें छप जाने चाहियें। इस बुराईका भण्डाफोड़ करनेमें किसीका झूठा लिहाज नहीं करना चाहिये। सार्वजनिक बुराईके लिये प्रबल लोकमत जैसा कोई अच्छा इलाज नहीं हैं। इसमें कोई शक नहीं कि इन मामलोंको जनता बहुत उदासीनतासे देखती है, लेकिन सिर्फ जनताको ही क्यों दोष दिया जाय? उनके सामने ऐसी गुस्ताखीके मामले भी तो आने चाहिये। चोरीतकके मामलोंके लिये उन्हें पता लगाकर छापा जाता है, तब कहीं जाकर चोरी कम होती है। इसी तरह जबतक ऐसे मामले भी दबाये जाते रहेंगे, इस बुराईका इलाज नहीं हो सकता। बुराई और पाप भी अपने शिकारके लिये अन्धकार चाहते हैं। जब उनपर रोशनी पड़ती है, वे खुदबखुद खत्म हो जाते हैं।

लेकिन मुझे यह भी डर है कि आजकलकी लड़कीको भी तो अनेकोंकी दृष्टिमें आकर्षक बनना प्रिय है। वह अतिसाहसको पसंद करती है। मालूम होता है कि पत्र-लेखिकाने जिस साहसका जिक्र किया है, वह असाधारण है। आजकलकी लड़की वर्षा या धूपसे बचनेके उद्देश्यसे नहीं, बल्कि लोगोंका ध्यान अपनी ओर खींचनेके लिये तरह-तरहके भड़कीले कपड़े पहनती है। वह अपनेको रंगकर कुदरतको भी मात करना और असाधारण सुन्दर बनना चाहती है। ऐसी लड़कियोंके लिये कोई अहिंसक मार्ग नहीं है। मैं इन पृष्ठोंमें बहुत बार लिख चुका हूँ कि हमारे हृदयमें अहिंसाकी भावनाके विकासके लिये भी कुछ निश्चित नियम होते हैं। अहिंसाकी भावना बहुत महान प्रयत्न है।

विचार और जीवनके तरीकेमें यह क्रांति उत्पन्न कर देता है। यदि मेरी पत्र-लेखिका और उस तरहका विचार रखनेवाली लड़कियाँ ऊपर बताये गये तरीकेसे अपने जीवनको बिलकुल ही बदल डालें, तो उन्हें जल्दी ही यह अनुभव होने लगेगा कि उनके सम्पर्कमें आनेवाले नवजवान उनका आदर करना तथा उनकी उपस्थितिमें भलोचित व्यवहार करना सीखने लगे हैं। लेकिन यदि उन्हें मालूम होने लगे कि उनकी लाज और धर्मपर हमला होनेका खतरा है, तो उनमें उस पशु-मनुष्यके आगे आत्मसमर्पणके बजाय मर जानेतकका साहस होना चाहिये। कहा जाता है कि कभी-कभी लड़कीको इस तरह बाँधकर या मुँहमें कपड़ा ठूँसकर विवश कर दिया जाता है कि वह आसानीसे मर भी नहीं सकती, जैसी कि मैंने सलाह दी है। लेकिन मैं फिर भी जोरोंके साथ यह कहता हूँ कि जिस लड़कीमें मुकाबलेका दृढ़ संकल्प है, वह उसे असहाय बनानेके लिये बाँधे गये सब बन्धनोंको तोड़ सकती है। दृढ़ संकल्प उसे मरनेकी शक्ति दे सकता है।

लेकिन यह साहस और यह दिलेरी उन्हींके लिये संभव है, जिन्होंने इसका अभ्यास कर लिया है। जिनका अहिंसापर दृढ़ विश्वास नहीं है, उन्हें रक्षाके साधारण तरीके सीखकर कायर युवकोंके अश्लील व्यवहारसे अपनेको बचाना चाहिये।

पर बड़ा सवाल तो यह है कि युवक साधारण शिष्टाचार भी क्यों छोड़ दें, जिनसे भली लड़कियोंको हमेशा उनसे सताये जानेका डर लगता रहे? मुझे यह जानकर दुःख होता है कि ज्यादातर नौजवानोंमें बहादुरीका जरा भी माद्दा नहीं रहा। लेकिन उनमें एक वर्गके नाते नामवर होनेकी डाह पैदा होनी चाहिये। उन्हें अपने साथियोंमें होनेवाली प्रत्येक ऐसी वारदातकी जाँच करनी चाहिये। उन्हें हरएक स्त्रीको अपनी मां और बहनकी तरह आदर करना चाहिये। यदि वे शिष्टाचार नहीं सीखते, तो उनकी बाकी सारी लिखायी-पढ़ायी फिजूल है।

और क्या यह प्रोफेसरों और स्कूल-मास्टरोंका फर्ज नहीं है कि वे लोगोंके सामने जैसे विद्यार्थियोंकी पढ़ाईके लिये जिम्मेवार होते हैं उसी तरह उनके शिष्टाचार और सदाचारके लिये भी उनको पूरी तसल्ली दें?

हरिजन सेवक
३१ दिसम्बर, १९३८

राजकोट

राजकोटकी लड़ाई जैसी शानके साथ शुरू हुई थी उसी तरह अभी हालमें ही समाप्त भी हो गयी है, लेकिन अभी तक उसके बारेमें मैंने शायद ही कुछ कहा हो। मेरी खामोशीकी यह वजह नहीं कि उसमें मेरी दिलचस्पी न हो। इस राज्यके साथ मेरे जो गहरे ताल्लुकात रहे हैं उनके कारण यह तो सम्भव ही नहीं है। इस रियासतमें मेरे पिता दीवान थे। इसके अलावा, वर्तमान ठाकुर साहबके पिता, जिनका कि अब स्वर्गवास हो चुका है, मुझे अपने पिताकी तरह मानते थे। मेरी खामोशीकी बात तो यह थी कि सरदार वल्लभभाई इस आन्दोलनकी आत्मा थे और उनकी या उनके कामकी प्रशंसा करना आत्म-स्तुति करनेके समान होगा।

इस लड़ाईने यह बतला दिया है कि अगर सामान्य प्रजा काफी तौरसे उसपर अमल करे, तो अहिंसात्मक असहयोग क्या नहीं कर सकता है। राजकोटकी प्रजाने इस लड़ाईमें जो एकता, दृढ़ता और कष्ट-सहनकी क्षमता बतलायी है उसकी मुझे बिलकुल आशा नहीं थी। लेकिन लोगोंने बतला दिया है कि अपने शासककी बनिस्बत वे महान हैं और अहिंसात्मक कार्यमें एकमत प्रजाके सामने अंग्रेज दीवानकी भी कुछ नहीं चल सकती।

मेरे पास जो कागजात हैं उनसे मैं जानता हूं कि रेजिडेण्टके समर्थनसे सर पैट्रिक कैडलने जो कुछ किया वह ठाकुरसाहबके नौकरकी हैसियतसे बड़ा अशोभनीय है। उन्होंने तो इस तरहका काम किया मानों वही राज्यके मालिक हों। इस बातका कि वे शासक जातिके हैं, याने अंग्रेज हैं, और उनकी नियुक्ति केन्द्रीय सत्ता द्वारा हुई है, उन्होंने बड़ा दुरुपयोग किया है और वे यह मानकर चलें कि अपनी मनमानी करनेका उन्हें पूरा अख्तियार है। यह लिखते वक्ततक मैं यह नहीं जानता कि वह नौकरीसे हट गये या क्या हुआ। मेरे पास जो पत्र-व्यवहार है उनसे जाहिर होता है कि अंग्रेज दीवानका रखना कहांतक अक्लमन्दीकी बात है। इसपर राजाओंको गम्भीरताके साथ विचार करना चाहिये। केन्द्रीय सत्ताको भी अपने रेजिडेण्टोंपर इस बातकी निगरानी रखनी चाहिये कि उसकी घोषणाओंके शब्दोंपर ही नहीं बल्कि उनमें निहित भावनापर भी अमल होता है या नहीं।

जो राजा रेजिडेण्टोंके डरसे मरे जाते हैं, आशा है, वे राजकोटके इस उदाहरणसे जान जायेंगे कि अगर वे सच्चे हैं और उनकी प्रजा वस्तुतः उनके साथ है, तो उन्हें रेजिडेण्टोंसे डरनेकी कोई जरूरत नहीं। निस्सन्देह उन्हें यह महसूस करना चाहिये कि सार्वभौम सत्ता न तो शिमलामें है, न व्हाइटहालमें, बल्कि उनकी प्रजामें ही उसका निवास है। अपनी अहिंसा-त्मक शक्तिपर विश्वास रखनेवाली जागृत प्रजा तो सशस्त्र शक्तियोंके किसी भी सम्मिलनके सामने स्वतंत्र ही रहती है। राजकोटमें तीन महीनेके अन्दर जो कुछ हुआ वही हरएक रियासतमें हो सकता है, बशर्ते वहांकी प्रजा भी वैसी ही हो, जैसी कि राजकोटकी साबित हुई है।

मैं यह दावा नहीं करता कि राजकोटकी प्रजामें अहिंसाका वह अद्भुत गुण आ गया है, जो किसी भी झगड़ेका मुकाबला कर सकता है। लेकिन राजकोटने यह बतला दिया है कि सारी प्रजा द्वारा संगठित रूपसे ग्रहण की हुई मामूली अहिंसा भी कितना काम कर सकती है।

राजकोटकी प्रजाका काम निश्चय ही महान है, लेकिन सत्याग्रहीके रूपमें उसकी सच्ची परीक्षा तो अभी होनी ही है। उसने जिन गुणोंसे विजय प्राप्त की है, उसे कायम रखनेके लिये भी उन्हीं गुणोंपर वह कायम न रही, तो सारा किया-कराया चौपट हो जायगा। सारे हिन्दुस्तानमें एक लम्बे अभ्यासके बाद कांग्रेसवालोंने सविनय अवज्ञा करनेकी अपनी क्षमता तो दिखला दी है, लेकिन रचनात्मक अहिंसाकी अपनी योग्यता अभी उन्हें बतलानी है। हो सकता है कि सविनय अवज्ञा तो हिंसासे निश्चित होनेपर भी काम लायक समझ ली जाय। लेकिन रचनात्मक कार्यक्रममें हिंसाका छिपना मुश्किल है, उसमें हिंसाका आसानीसे पता चल जाता है। और हिंसाका जरा भी समावेश विजयको भी एक जालमें परिणत कर देता है और वह विजय एक भ्रम साबित होती है। अतः क्या प्रजा आवश्यक निःस्वार्थ और आत्म-त्याग दिखलायेगी? अपना और अपने आश्रितोंका स्वार्थ-साधन करनेके प्रलोभनसे क्या वह दूर रहेगी? खुद सत्ता पानेके लिये जरा भी छीना-झपटी करनेसे बहुसंख्यक लोगोंको वह लाभ नहीं होगा जो ऐसे बुद्धिमत्तापूर्ण और निश्चयी नेतृत्वसे होगा जिसके आज्ञा-पालनके लिये सब स्वेच्छापूर्वक तैयार हों। काठियावाड़ अन्दरूनी कुचक्रोंके लिये प्रसिद्ध है। उसमें जहाँ वीरोंको पैदा करनेकी खासियत है वहाँ राजनीतिज्ञोंकी ऐसी जाति भी मौजूद है जिसके जीवनका एकमात्र उद्देश्य अपना स्वार्थ सिद्ध करना है। अगर इन राजनीतिज्ञोंकी चली तो राजकोटमें राम-राज्य नहीं होगा। राम-राज्यका मतलब तो है सर्वतोमुखी स्वार्थ-त्याग। उसके लिये लोगोंको अपने ऊपर अपने आप अंकुश लगाना होगा। प्रजा अगर रचनात्मक अहिंसाको असली रूप दे, तो राजकोटकी प्रजाका ऐसा प्रभाव पड़ेगा जिससे राजकोट आसानीके साथ एक अनुकरणीय उदाहरण बन जायगा।

इसलिये विजयके इस अवसरपर आत्मसंतोष करने और व्यर्थकी खुशियाँ मनानेके बजाय विनम्रता, आत्म-निरीक्षण और ईश्वर-प्रार्थनासे काम लेना चाहिये। मैं सब कुछ उत्सुकताके साथ देखता रहूँगा और ईश्वरसे प्रार्थना करूँगा।

हरिजन सेवक
७ जनवरी, १९३९

अहिंसा क्या बेकार गयी है ?

अपने लेखपर हुई इस आलोचनाका कि यहूदी तो पिछले २००० वर्षसे अहिंसक ही रहे, मैंने जो जवाब दिया था, उसपर एक सम्पादकीय लेखमें 'स्टेट्समैन' ने लिखा है–

"पास्टर नीमोलर और लूथेरन चर्चपर हुए अत्याचारोंकी बात सारी दुनियांको मालूम है; अनेक पास्टरों और साधारण ईसाइयोंने पोपकी अदालतों, हिंसा और धमकियोंके कष्टोंको बहादुरीके साथ बर्दाश्त किया और बदले या प्रतिहिंसाका ख्याल किये बगैर वे सत्यपर कायम रहे। लेकिन जर्मनीमें कौन-सा हृदय-परिवर्तन नजर आता है ?

"बाइबिलके रास्ते चलनेवाले संघों (बाइबिल सरचर्स लीगों) के जिन सदस्योंने नाजी सैनिकवादको ईसाके शान्ति-संदेशका विरोधी मानकर ग्रहण नहीं किया, वे आज जेलखानों और नजरबन्द-कैम्पोंमें पड़े सड़ रहे हैं और पिछले पाँच सालसे उनकी यही दुर्दशा हो रही है। कितने जर्मन ऐसे हैं जो उनके बारेमें कुछ जानते है ? या जानते भी है तो उनके लिए कुछ करते हैं ?

"अहिंसा चाहे कमजोरोंका शस्त्र हो या बलवानोंका, किन्हीं अत्यन्त विशेष परिस्थितियोंके अलावा वह सामाजिकके बजाय व्यक्तिगत प्रयोगकी ही चीज मालूम पड़ती है। मनुष्य अपनी खुदकी मुक्तिके लिये प्रयत्न करता रहे, राजनीतिज्ञोंका संबंध तो कारणों, सिद्धान्तों, और अल्पसंख्यकोंसे है। गान्धीजीका कहना है कि 'हर हिटलरको उस साहसके सामने झुकना पड़ेगा जो उसके अपने तूफानी सैनिकों द्वारा प्रदर्शित साहससे निश्चित रूपेण श्रेष्ठ है।' अगर ऐसा होता, तो हम सोचते हैं कि हर वान ओसीट्जकी जैसे मनुष्यकी उसने जरूर तारीफ की होगी। मगर नाजियोंके लिए साहस उसी हालतमें गुण मालूम होता है कि जब उनके अपने ही समर्थक उससे काम लें; अन्यत्र वह 'मार्क्सवादी' यहूदियोंकी धृष्टतापूर्ण उत्तेजना हो जाती है। गांधीजीने इस विषयमें कारगर रूपमें कुछ करनेमें बड़े-बड़े राष्ट्रोंके असमर्थ होनेके कारण अपना नुसखा पेश किया है। यह ऐसी असमर्थता है जिसके लिये हम सबको अफसोस है और हम सब चाहते हैं कि यह न रहे। यहूदियोंको उनकी सहानुभूतिसे चाहे बड़ा आश्वासन मिले, लेकिन उनकी बुद्धिमें इससे ज्यादा मदद मिलनेकी संभावना नहीं है। ईसामसीहका उदाहरण अहिंसाका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है और उनको जिस बुरी तरह मारा गया उससे हमेशाके लिये यह सिद्ध हो गया है कि सांसारिक और भौतिक रूपमें यह बड़ी बुरी तरह असफल हो सकती है।"

मैं तो यह नहीं समझता कि पास्टर नीमोलर और दूसरे व्यक्तियोंका कष्ट सहन बेकार साबित हुआ है। उन्होंने अपने स्वाभिमानको कायम रखा है और यह साबित कर दिया है कि उनकी श्रद्धा किसी भी कष्ट-सहनसे विचलित नहीं हो सकती। हर हिटलरके दिल पिघलानेके लिए वे काफी साबित नहीं हुए इससे केवल यही जाहिर होता है कि हर हिटलरका दिल

पत्थरसे भी कठोर चीजका बना हुआ है। मगर सख्तसे सख्त दिल भी अहिंसाकी गर्मीसे पिघल जायगा और इस हिसाबसे अहिंसाकी ताकतकी तो कोई सीमा ही नहीं।

हरएक कार्य बहुतसे ताकतोंका परिणाम है, चाहे वे एक दूसरेके विरुद्ध असर करनेवाली ही क्यों न हों। ताकत कभी जाया नहीं होती। यही हम मैकेनिक्सकी किताबोंमें पढ़ते हैं। मनुष्यके कामोंमें भी यह उसी तरहसे लागू है। असलमें बात यह है कि एक मामलेपर हमें आमतौरपर यह मालूम होता है कि वहाँ कौन-कौनसी ताकत काम कर रहीं हैं और ऐसी हालतमें हम हिसाब लगाकर उसका नतीजा भी पहले बता सकते हैं। जहाँतक मनुष्यके कामोंका ताल्लुक है, वे ऐसी मुख्तलिफ ताकतोंके परिणाम होते हैं कि जिनमेंसे बहुतसी ताकतोंका हमें इल्मतक नहीं होता।

लेकिन हमें अपने अज्ञानको इन ताकतोंकी क्षमतामें अविश्वास करनेका कारण नहीं बनाना चाहिए। होना तो यह चाहिए कि अज्ञानके कारण हमारा इसमें और भी ज्यादा विश्वास हो जाय। चूंकि अहिंसा दुनियाकी सबसे बड़ी ताकत है और काम भी यह बहुत छिपे ढंगसे करती है, इसलिए इसमें बहुत भारी श्रद्धा रखनेकी जरूरत है। जिस तरह ईश्वरमें श्रद्धा रखना हम अपना मुख्य धर्म समझते हैं उसी तरह अहिंसापर श्रद्धा रखना धर्म समझना चाहिए।

हर हिटलर एक आदमी मात्र ही तो है और उसकी जिन्दगी एक औसतन आदमीकी नाचीज जिन्दगीसे बड़ी नहीं है। अगर जनताने उसका साथ देना छोड़ दिया, तो उसका जायाशुदा ताकत होगी। मानव-समाजके कष्ट सहनको उसकी तरफसे कोई जवाब न मिलनेपर मैं निराश नहीं हुआ हूं। मगर, मैं यह नहीं मान सकता कि जर्मनोंके पास दिल नहीं है या संसारकी दूसरी जातियोंकी अपेक्षा वे कम सहृदय हैं। वे एक न एक दिन अपने नेताके खिलाफ विद्रोह कर देंगे। अगर समयके अन्दर उनकी आँखें न खुलीं और जब वे ऐसा करेंगे तब हम देखेंगे कि पास्टर नीमोलर और उसके साथियोंकी मुसीबतों और कष्ट-सहनने जागृति पैदा करनेमें कितना काम किया है।

सशस्त्र संघर्षसे जर्मन हथियार नष्ट किये जा सकते हैं, पर जर्मनीके दिलको नहीं बदला जा सकता, जैसा कि पिछले महायुद्धकी पराजय नहीं कर सकी। उसने एक हिटलर पैदा किया जो विजयी राष्ट्रोंसे बदला लेनेपर तुला हुआ है और यह बदला किस तरहका है, इसका जवाब यही होना चाहिए जो स्टीफेन्सनने अपने साथियोंको दिया था, जो गहरी खाई पाटनेसे हताश हो गये थे और जिससे पहले रेलवेका निकलना नामुमकिन हो गया था। उसने अपने साथियोंसे, जिनमें विश्वासकी कमी भी थी, कहा कि "विश्वास बढ़ाओ और गढ़ेको भरे चले जाओ। वह अथाह नहीं है और इसलिए वह जरूर भर जायगा।" इसी तरह मैं इस बातसे मायूस नहीं हुआ हूँ कि हर हिटलर या जर्मनीका दिल अभीतक नहीं पिघला है। इसके बखिलाफ मैं यही कहूँगा कि मुसीबतोंपर मुसीबतें सहते चले जाओ जबतक कि अन्धोंको भी यह नजर आने न लगे कि दिल पिघल गया है।

जिस तरह पास्टर नीमोलरकी मुसीबतें बर्दाश्त करनेके कारण शान बढ़ गयी है, उसी तरह अगर एक यहूदी भी बहादुरीके साथ उठ कर खड़ा हो जाय और हिटलरके हुक्मके आगे सर झुकानेसे इन्कार कर दे तो उसकी शान भी बढ़ जायगी और अपने भाई यहूदियोंके लिए मुक्तिका रास्ता साफ कर देगा।

मेरा यह विश्वास है कि अहिंसा व्यक्तिगत गुण नहीं है, बल्कि एक सामाजिक गुण है जिसे कि दूसरे गुणोंकी तरह विकसित करना चाहिए। इसमें कोई शक नहीं कि समाज अपने आपसके कारोबारमें अहिंसाका प्रयोग करनेसे ही व्यवस्थित होता है। मैं जो कहना चाहता हूँ, वह यह है कि इसे एक बड़े राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पैमानेपर काममें लाया जाय।

मैं "स्टेट्समैन" द्वारा जाहिरकी गयी इस रायसे सहमत नहीं हूँ कि हजरत ईसाकी मिसालने हमेशाके लिये यह साबित कर दिया है कि अहिंसा सांसारिक बातोंमें नाकामयाब साबित होती है। हालांकि मैं जात-पाँतके दृष्टिकोणसे अपने आपको ईसाई नहीं कह सकता मगर ईसाने अपनी कुर्बानीसे जो उदाहरण कायम किया है उससे मेरी अहिंसामें अखंड श्रद्धा और भी बढ़ गयी है और अहिंसाके इसी सिद्धान्तके अनुसार मेरे तमाम धार्मिक और सांसारिक काम होते हैं। मुझे यह भी मालूम है कि सैकड़ों ईसाई ऐसे हैं जिनका ऐसा ही विश्वास है। अगर ईसाने हमें अपने तमाम जीवनको विश्व-प्रेमके सनातन सिद्धान्तके अनुसार बनानेका संदेश नहीं दिया तो उनका जीवन और बलिदान बेकार है।

हरिजन सेवक
१४ जनवरी, १९३९

❀

"मेरे अहिंसा-धर्ममें खतरेके वक्त अपने अजीजोंको मुसीबतमें छोड़कर भाग खड़े होनेके लिए जगह नहीं। मारना या नामर्दीके साथ भाग खड़ा होना, इनमेंसे यदि मुझे किसी बातको पसंद करना पड़े तो मेरा उसूल कहता है कि मारनेका, हिंसाका, रास्ता पसन्द करो।"

—गांधीजी

प्रेम-एक सार्वजनिक नीति

एक भारतीय ईसाई लिखते हैं–

"यहूदियोंवाले आपके लेखपर तरह-तरहकी काफी आलोचना हुई है। मैं बस एकातवः रहना चाहता हूँ। वह यह कि ईसाने जिस प्रेमकी शिक्षा दी वह व्यक्तिगत गुण है, समाज या समूहकी नीति वह नहीं है।

"ईसाके जीवनकी शिक्षा सबके लिए है। एकत्रित भावमें वह उससे कम लागू नहीं है जितनी व्यक्तिगत तौरपर। इससे इनकार करना ईसाई धर्मकी मूल सचाईको ही इनकार कर देना है। ईसा प्रकाशकी भाँति दुनियाका भार कम करनेके लिए आये। वह पैगम्बरोंकी परम्परा और जगत-नियमको पूरा करने आये। वह मसीहा थे जिनकी कबसे प्रतीक्षा थी। अनुयायियोंने मनुष्य जातिका त्राता कहकर उन्हें अपनाया। वह तबकी व्यवस्थासे एकदम असंतुष्ट थे। उस समयके यहूदी पुरोहितों और पंडितोंके दंभ और घमंडसे उनको इतनी तकलीफ हुई थी कि उन्हें ईसाने 'जहरीली औलाद' और 'सफेद ताबूत' तक कहा। उन्होंने घूसखोरीका और दूसरी खराबियोंका खुला विरोध किया। मंदिरके आँगनमें पैसा सामने लेकर बैठनेवाले तबके यहूदी पंडोंकी चौकियोंको उलट-पलट दिया। उनको डपटा कि तुम लोगोंने ईश्वरके मंदिरको चोरोंका घर बना लिया है। जात-बेजातके साथ खाकर और वेश्याओंको तसल्लीकी बातें कहकर उन्होंने छूआछूतके पापको लानत भेजी।

"उन्होंने जरूर कहा कि जो राज्यका है वह राजाको दो। पर जो ईश्वरका है उसे ईश्वरके प्रति उन्होंने समर्पित होने दिया। राज्यके भागको राजाको दे देनेका मतलब ही यह है कि राज्य कुछ हड़पे नहीं। अगर राजा ऐसा करे तो इसमें उसे सहयोग नहीं दिया जा सकता। उनके उपदेशोंने लोगोंमें आवेश भर दिया। क्योंकि वह उपदेश क्रांतिकारी था और सार्वजनिक था। नहीं तो अधिकारियोंको क्यों चिन्ता होती कि उस पुरुषको गिरफ्तार करके मौतकी सजा दें जिसमें फैसला देनेवाला जज तक भी 'पापकी कोई रेख'न देख सका?

"असलमें अधिकारियोंने ईसामसीहकी शिक्षामें उस शक्तिका बीज देखा जिसका आचरण हो तो वह उनकी समाजके सारे ढाँचेही को ढा दे। जब प्रभुने यरूशलमपर आँसू गिराये तो वह रोना व्यक्तियोंके ऊपर न था; वह तो आँसू उस समूची व्यवस्थापर बहाये गये थे जो यहूदी-समाजको सत्यानाशकी ओर धकेल रही थी। उन्होंने कहा तो एकके लिए नहीं, तमामके सम्बोधनके लिये साधिकार कहा था कि मार्ग वह है, सत्य वह है, जीवन वह है; और एक और अकेली ही राह है जो सच्चे लक्ष्यतक पहुँचेगी, और वह प्रेमकी राह है। जो एक गालपर तुम्हें मारे उसके सामने तुम दूसरी गाल भी कर दो; जो तुमसे द्वेष करे, उससे तुम प्रेम करो; दूसरेकी आँखका तिल बतानेसे पहले अपनी आँखका पहाड़ देखो; दुखमें सुख मानो; जो कष्ट देते हैं, उनके लिए

प्रार्थना करो; अपराधीको हजारपर हजार बार क्षमा करो; हीनकी सेवा करो; और सब छोड़कर ईसाका अनुसरण करो। ये मूल तत्त्व हैं उस शिक्षाके जो सार्वजनिक है। इसीके लिये ईसा जिये और ईसा मरे। शिष्योंको उन्होंने अपने जीवन और उदाहरण द्वारा जगतको इस शिक्षाका प्रकाश देनेको कहा। उन शिष्योंने भी स्वयं एक नये समाजके निर्माणकी प्रेरणा अपनेमें अनुभव की। ईसाई धर्मका आरंभिक चर्च इसका उजागर प्रमाण है। उसको अपने शहादतके पवित्र खूनसे सींचकर उन्होंने खड़ा किया। उसे 'ईसामसीहकी काया' कहा जाता है। नये टेस्टामेंटका एक सबसे सुन्दर भाग है कौरिंथियनवाला १३ वाँ अध्याय। संत पाल द्वारा वह उस समय लिखा गया जब कौरिंथका चर्च आपसी झगड़ोंसे छिन्न-भिन्न हो रहा था। संतकी उस वाणीमें जो प्रेमका संदेश है वह सामूहिक कर्मका आदेश ही तो है। 'युद्ध-प्रबुद्ध चर्च' यह शब्द जो चला वह अवश्य उस ईसाई-संघका प्रतीक है जिसने बुराईकी ताकतोंका मुकाबिला माना, और विरोधके लिए प्रेमका अस्त्र हाथ में लिया जो सबको जीत लेता है।

"सहज हो सकता है कि हम आन्तरिक साहस और श्रद्धाकी कमीके कारण ईसाकी शिक्षाको व्यक्तिगत आचरणका नियम बताकर अलग कर दें। लेकिन वह खतरनाक होगा। यही तो है जिसने ईसाई धर्मी माने जानेवाले राष्ट्रोंको आजकी-सी खेदजनक हालत तक ला दिया है।

"बेशक अहिंसाका फल हमेशा हमारी इन आँखोंके सामने देखने लायक नहीं होता। शहीद अपनी शहादतका फल अपने जीवनमें सदा नहीं देख पाते। पर निःस्वार्थ प्रेम फल माँगता ही कब है? वह तो लोक-कल्याणको देखता है, जो उसका अंतरंग है। समाजको एक ऊँचे तलतक उठानेकी उसमें प्रेरणा है, और मानव-प्रकृतिमें अपरिमित विश्वास। प्रेमकी राह चलना आसान नहीं है, यह तो ठीक ही है। और अगाध प्रेमके सिवा अहिंसा और दूसरी वस्तु क्या है? लेकिन प्रेमको समाज-नीतिसे बाहर और अलग कर डालना तो ईसाके धर्मको इनकार कर देना ही नहीं है, बल्कि संसारके सब बड़े धर्मोंका ही निषेधकर देना है।

"राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय पैमानेपर अहिंसाको अभी काफी नहीं परखा गया है। पर जहाँ गाँधीजी द्वारा उसका प्रयोग हुआ है, उसको सफलता ही मिली है। 'लाठी और भैंस' वाली नीतिके ताबे होकर क्या योरप ईसामसीहकी शिक्षाको खुल्लमखुल्ला झुठला ही नहीं रहा है? यह सवाल है, जो तमाम ईसाई देशोंके सामने है। सबसे अधिक स्वतन्त्रताका सबूत क्या इसमें है कि ताकतका मुकाबला वैसी ही पाशवी ताकतके हथियारोंसे किया जाय? या कि यह भी हो सकता है कि आदर्श और स्थायी स्वतन्त्र राष्ट्र अथवा राष्ट्रों द्वारा स्वेच्छापूर्वक बहाये गये उनके खूनमेंसे ही उत्पन्न होगी?

"ओह क्रास, जिससे कि मेरा सिर सीधा रहता है,
मैं तुमसे भागना न चाहूँ;
धूलमें मिला हूँ, जीवन-दीप बुझ रहा है
पर धरतीसे खिल उठेगा, प्रभाकी भाँति
यह जीवन, जिसका अन्त न होगा।"

इस पत्रसे ईमानदार शंका करनेवालोंका समाधान हो जाना चाहिये कि ईसाने जिस प्रेमका उपदेश दिया और आचरण किया वह केवल व्यक्तिगत पदार्थ नहीं है, बल्कि लाजिमी तौरपर वह एक सामाजिक और सामूहिक नीति है। और बुद्धने ईसासे ६०० वर्ष पहले उसीका उपदेश दिया था और आचरण किया था।

हरिजन-सेवक
२८ जनवरी, १९३९

हिंसा बनाम अहिंसा

हिन्दुस्तानमें आज जगह-जगह हिंसा और अहिंसाकी पद्धतिके बीच एक द्वन्द्व युद्ध चल रहा है। पानीको निकलनेका रास्ता मिलते ही उसमें से उसका प्रवाह भयानक जोरसे बहने लगता है। अहिंसा पागलपनेसे कामकर ही नहीं सकती। वह तो अनुशासनका सारतत्त्व है। किन्तु जब वह सक्रिय बन जाती है, तब हिंसाकी कोई भी शक्तियां उसे जेर नहीं सकतीं। अहिंसा सोलहों कलाओंसे वहीं उदित होती है, जहाँ उसके नेताओंमें कुंदनकी जैसी शुद्धता और अटूट श्रद्धा होती है। इसलिये द्वन्द्वमें यदि अहिंसा हारती हुई दिखायी दे तो ऐसा नेताओंकी श्रद्धा कम होनेसे या उनकी शुद्धतामें कमी आ जानेसे अथवा दोनों ही कारणोंसे होगा। यह होते हुये भी अन्तमें हिंसापर अहिंसाकी ही विजय होगी, यह माननेका कारण मालूम होता है। जो घटनाएँ घट रही हैं, उनका रुख ऐसा है कि हिंसाकी व्यर्थता कार्यकर्त्ता खूब ही समझ जायेंगे। पर एक प्रसिद्ध कार्यकर्त्ताने लिखा है—

"सत्याग्रहका मुकाबला करनेका रियासतोंका तरीका ब्रिटिश सत्ताके तरीकेसे भिन्न मालूम होता है। कुछ रियासतोंमें जो तरीके अख्त्यार किये गये हैं वे बहुत ही अमानुषिक और बर्बर हैं। ऐसी पशुताके आगे अहिंसा क्या सफल होगी ? स्त्रियोंकी इज्जत-आबरूकी रक्षा करनेकी भी वहाँ इजाजत नहीं। साधारण कानून भी ऐसी रक्षाका अधिकार देता है, तो फिर बर्बर और अमानुषिक तन्त्रका सामना करनेमें इस हकको क्यों न अमलमें लाया जाय ? इन मुद्दोंपर क्या आप प्रकाश डालेंगे ?

"उड़ीसाके पोलिटिकल एजेण्टकी हत्याके सम्बन्धमें जो विचार आपने प्रगट किये हैं उन्हें मैंने कई बार पढ़ा है। अफसोसकी बात है कि उड़ीसाके देशी राज्योंकी प्रजापर जो अत्याचार हुए हैं उनका आपने उल्लेख नहीं किया। एजेंटकी यह हत्या, क्या देशी राज्योंके अधिकारियोंको

रहमदिल बनानेके लिए एक दैवी चेतावनी नहीं है। कुल मिलाकर देखा जाय, तो देशी राज्योंकी प्रजा और पोलिटिकल विभाग, इन दोनोंमें हमारी सहानुभूतिका कौन अधिक पात्र है? अगर भीड़ने पोलिटिकल एजेंटके विरुद्ध हिंसासे काम लेनेमें गलती की तो क्या पोलिटिकल एजेंटका गोली चलाना और इस तरह भीड़को उत्तेजना दिलानेका काम उचित था? और जिस भयानक दमनके लिए पोलिटिकल एजेंट जिम्मेदार था, उसके लिए आप क्या कहेंगे? यह सही है कि पोलिटिकल एजेंटकी हत्या एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना है, पर इसके लिए कौन जवाबदेह है? अगर एजेंटने उड़ीसाके देशी राज्योंको उचित सलाह दी होती और भयंकर दमनमें खुद हिस्सा न लिया होता, तो लोग कानूनसे बाहर न हो पाते।

"यह घटना देशी राज्योंमें काम करनेके लिये चेतावनीस्वरूप होनी चाहिए, आपके इस कथनसे तो मैं सहमत हूँ। पर साथ ही, सत्य और अहिंसाके आप जैसे महान उपदेशकने भारत-सरकारके पोलिटिकल विभागको—और खासकर पूरबके देशी राज्योंकी एजेंसीको भी आपने क्यों चेतावनी नहीं दी कि देशी राज्योंकी प्रजाके साथ पेश आनेमें वे ऐसे जंगली तरीके अख्त्यार न करें? एजेंसीकी कार्रवाई सचमुच ही भयंकर है, और पोलिटिकल एजेंटकी हत्या एजेंसीकी दमन नीतिकी पराकाष्ठाका परिणाम है। यह घटना दुर्भाग्यपूर्ण जरूर है, पर एजेंट इसके लिए खुद जवाबदेह था। और भीड़के द्वारा वध किये गये एजेंटके लिए अगर हमदर्दी जाहिर की जाती है, तो उस जगह जो दो आदमी—ज्यादातर पुलिसकी हिंसाके परिणाम-स्वरूप मारे गये, उनके लिये सहानुभूति क्यों न जाहिर की जाय? मुझे तो ऐसा लगता है कि एजेंट बाजलगेटकी हत्या सबसे पहले तो भारत-सरकारके पोलिटिकल विभाग तथा देशी राज्योंके लिए, और तब बादको हमारे लिये चेतावनीस्वरूप समझी जानी चाहिए।"

निस्सन्देह, आत्मरक्षाका अधिकार सब किसीको है, और इसी तरह सशस्त्र विद्रोह करनेका अधिकार भी है। पर गहराईसे विचार करनेके बाद कांग्रेसने जान-बूझकर दोनोंका ही त्याग कर दिया है। कांग्रेसने ऐसा प्रबल कारणोंसे किया है। अहिंसामें यदि बड़ीसे-बड़ी उत्तेजनाके आगे भी डटे रहने और पस्तहिम्मत न होनेकी ताकत न हो, तो उसकी बहुत बड़ी कीमत नहीं। चाहे जितनी उत्तेजनाके सामने टिके रहनेकी शक्तिमें ही उसकी सच्ची कसौटी है। स्त्रियोंका सतीत्व लूटा गया हो और उसे अपनी आँखों देखनेवाले अहिंसावादी साक्षी हों, तो वे जीवित कहाँसे रहेंगे? और सतीत्व लूटनेकी घटनाओंका पीछेसे पता लगा, तो उस वक्त हिंसक बलके प्रयोगका अर्थ ही क्या रहा? अहिंसाका तरीका तो पीछे भी कारगर हो सकता है। अत्याचारियों पर मुकदमा चलाया जा सकता है या उनके कृत्योंको लोकमतके आगे खोलकर रखा जा सकता है। अपराधियोंको कुद्ध भीड़के हवाले कर देना तो बर्बरतापूर्ण ही समझा जा सकता है।

एजेंटकी हत्यासे सम्बन्ध रखनेवाली दलील अप्रस्तुत है। मुझे एक तरफ राज्यकर्ता तथा पोलिटिकल एजेंट, और दूसरी तरफ लोगोंकी कार्रवाइयोंका न्याय कुछ तौलना तो था नहीं। एजेंटकी हत्याकी साफ-साफ शब्दोंमें निन्दा करना, और वह भी सिर्फ सहानुभूतिकी

भावनासे नहीं, बल्कि कांग्रेसकी मौलिक नीतिका भंग करने और अनुशासनहीन कृत्यके लिये--इतना ही मेरे लिये काफी था। राजाओंके दुष्कृत्योंपर मैंने 'हरिजन'में अक्सर प्रकाश डाला है, पर इसलिये नहीं कि लोग उनपर गुस्सा उतारें,बल्कि लोगोंको यह बतानेके ही एक-मात्र हेतुसे कि वे उन दुष्कृत्योंका मुकाबला अहिंसक होकर किस प्रकार कर सकते हैं। उड़ीसामें खासा सुन्दर काम चल रहा था, इस बातके मैं काफी प्रमाण दे सकता हूँ। इस हत्याने, वहाँके आंदोलनमें, जो ठीक तरहसे चल रहा था, खलल डाल दिया है। राणपुर आज भयानक जंगल बन गया है। निर्दोष और दोषी सभी भाग-भागकर छिप रहे हैं। दमनसे बचनेके लिये वे घर-बार छोड़-छोड़कर घरोंको वीरान करते जा रहे हैं, क्योंकि यह बात तो है नहीं कि केवल वास्तविक अपराधी ही दमनकी चक्कीमें पिसेंगे। किसी-न-किसी रूपमें वहाँ आतंक फैलाया जा रहा है, और सारे हिन्दुस्तानको लाचार होकर यह सब देखना पड़ रहा है। सत्ताधारी अपने अफसरोंकी---खासकर गोरे अफसरोंकी---हत्याका, सलूक करना किसी दूसरे तरीकेसे जानते ही नहीं। पर मुझे अपनी दलीलको अधिक विस्तार देनेकी जरूरत नहीं। हाथ-कंगनको आरसी क्या? दोनों ही मार्गोंकी आज हिन्दुस्तानमें परीक्षा हो रही है। कार्यकर्त्ताओंको दोनोंमेंसे एक मार्ग चुन लेना है। मैं यह जानता हूँ कि भारतवर्ष केवल अहिंसाके ही मार्गसे स्वतंत्र होगा। जो कार्यकर्त्ता कांग्रेसमें रहकर इससे अन्यथा विचार रखते हैं अथवा उलटी रीतिसे काम लेते हैं, वे अपने आपको तथा कांग्रेसको धक्का पहुँचा रहे हैं।

हरिजन सेवक
२८ जनवरी, १९३९

"डरकर भाग जाना कायरता है और कायरतासे न तो सम-झौता हो सकेगा, न अहिंसाको ही कुछ मदद मिलेगी। कायरता हिंसाकी एक किस्म है और उसे जीतना बहुत दुश्वार है। हिंसासे प्रेरित मनुष्यको हिंसा छोड़कर अहिंसाकी उत्तम शक्तिको ग्रहण करनेको समझानेमें सफल होनेकी आशा की जा सकती है, लेकिन कायरता तो सब प्रकारकी शक्तिका अभाव है।"

---गांधीजी

राजकोट

राजकोटकी लड़ाईसे मुझे व्यक्तिगत दिलचस्पी है। क्योंकि वहीं मैंने मैट्रिक तथा अपनी सारी शिक्षा पायी थी और अनेक वर्षोंतक मेरे पिता वहां दीवान रहे। वहांके लोगोंको जो तमाम मुसीबतें उठानी पड़ रही हैं, उनके बारेमें मेरी पत्नी इतना ज्यादा महसूस करती हैं कि मेरी ही तरह वृद्ध और राजकोट जैसी जगहके, जहां हरेक उसे जानता है, जेल-जीवनमें होने-वाली कठिनाइयोंको बहादुरीके साथ बर्दाश्त करनेमें मुझसे कम समर्थ होते हुए भी उसे ऐसा लगता है कि उसे राजकोट जाना ही चाहिये। और संभवतः पाठकोंके हाथमें यह लेख पहुँचनेतक वह वहाँ चली भी जायगी।

लेकिन मैं तो इस लड़ाईपर तटस्थ रूपसे ही विचार करना चाहता हूँ। इस सम्बन्धमें दिया हुआ सरदारका वक्तव्य इस दृष्टिसे एक कानूनी दस्तावेज है कि उसमें एक भी शब्द फालतू नहीं है और न उसमें कोई ऐसी बात है जिसका असंदिग्ध सबूतसे समर्थन होता हो। और उस सबूतमें, जिसमेंसे अधिकांश उन लिखित दस्तावेजों पर मुनहसिर है, वक्तव्यमें परिशिष्टके रूपमें जुड़े हुए हैं।

जो समझौता हुआ उसमें एक ब्रिटिश अफसर भी साझीदार था। उसे इस बातपर गर्व था कि वह ब्रिटिश सत्ताका प्रतिनिधि है। उसने शासकपर शासन करनेकी उम्मीद की थी। इसलिए वह इतना मूर्ख नहीं था कि वह सरदारके फन्देमें आ जाता। अतएव समझौतेको कायर राजाने नहीं तोड़ा। ब्रिटिश रेजिडेण्टको कॉंग्रेस और सरदारसे इसलिये नफरत थी कि वे ठाकुर साहबको दिवालिया बनने और शायद गद्दी छिननेसे बचाना चाहते हैं। लेकिन कांग्रेसके प्रभावको वह नहीं मिटा सका। इसलिए ठाकुर साहब अपनी प्रजाको दिये हुए अपने वायदेको पूरा करें, उससे पहले ही उसने उनसे उसे तोड़वा दिया। सरदारको राजकोटसे जो समाचार मिल रहे हैं उनपर विश्वास किया जाय, तो रेजिडेण्ट ब्रिटिश सिंहके लाल-लाल जबड़े दिखाकर प्रजासे मानों यह कह रहा है कि —

"तुम्हारा शासक तो हमारे हाथका खिलौना है। मैंने उसे गद्दीपर बैठाया है और उतार भी सकता हूँ। वह भलीभांति जानता था कि उसने मेरी इच्छाके विरुद्ध काम किया है। इसलिए उसके अपनी प्रजाके साथ समझौता करनेके कामको मैंने चौपट कर दिया है। तुम जो कांग्रेस और सरदारके साथ सम्बन्ध रखते हो, उसके लिए मैं तुम्हें ऐसा सबक दूँगा जिसे तुम एक पीढ़ीतक भी नहीं भूलोगे।"

शासकको एक तरहसे कैदी बनाकर उसने राजकोटमें दमनचक्र शुरू कर दिया है। सरदारको मिले एक ताजा तार में कहा गया है कि—

"बेचारे भाई जसाणी और दूसरे स्वयंसेवक गिरफ्तार हो गये। २९ स्वयंसेवक रातके

वक्त एजेंसीकी सीमामें दूरकी जगह ले जाकर बुरी तरहसे पीटे गये। गाँवमें भी स्वयं-सेवकोंके साथ ऐसा ही व्यवहार हो रहा है। ऐजेंसीकी पुलिस स्टेट एजेंसीका नियन्त्रण कर रही है और गैर फौजी सीमामें निजी मकानोंकी तलाशी ले रही है।"

ब्रिटिश भारतमें सविनय-अवज्ञाके दिनोंमें ब्रिटिश अधिकारी जो कुछ करते थे ब्रिटिश रेजिडेण्ट वही पुनरावृत्ति कर रहा है।

मैं जानता हूँ कि राजकोटकी जनता इन सब पागलपनका खुद पागल हुए बगैर मुकाबला कर सकती है और अपनेपर होनेवाली क्रूरताओंको शांति मगर बहादुरीके साथ बर्दाश्त करके विजयी ही नहीं होगी बल्कि ठाकुर साहबको भी आजाद करेगी। वह यह सिद्ध कर देगी कि कांग्रेसकी सार्वभौम सत्ताके मातहत वही सच्चा शासक है। लेकिन अगर वह पागल हो जाय, और दुर्बल प्रतिशोधका ख्याल करके हिंसात्मक कामोंका सहारा ले, तो उसकी हालत पहलेसे भी बदतर हो जायगी और तब कांग्रेसके सार्वभौमत्वका कोई असर नहीं पड़ेगा। कांग्रेसकी सार्वभौम सत्ता तो ठीक उसी तरह उन्हींके काम आती है जो अहिंसाके ढंगको अपनायें, जैसे कि ब्रिटेनकी सार्वभौम सत्ता 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'के सिद्धान्तको माननेवालों के ही काम आती है।

राजकोटकी प्रजाका जब शासक और उसकी जरा-सी पुलिससे ही नहीं बल्कि साम्राज्यके अनुशासनयुक्त गिरोहोंसे मुकाबला है, तब कांग्रेसका क्या कर्त्तव्य है?

पहली और स्वाभाविक बात यह है कि राजकोटकी प्रजाकी रक्षा और इज्जतके लिए कांग्रेसी मन्त्रिमंडल अपनेको जिम्मेदार बना ले। यह सच है कि गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट मंत्रियोंको रियासतोंके बारेमें कोई अधिकार नहीं देता। लेकिन ये एक ऐसे शक्तिशाली प्रांतके शासक हैं, जिसमें राजकोट तो एक छोटा-सा टुकड़ा मात्र है। इस हैसियतसे गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्टके बाहर भी उनके अधिकार और कर्त्तव्य हैं जो और भी अधिक महत्वपूर्ण है। फर्ज कीजिये कि भारतमें जितने भी गुण्डे हो सकते हों वे सब राजकोटमें जा बसें, और यह भी समझ लीजिये कि वहाँसे वे हिन्दुस्तान भरमें उत्पात मचायें, तो स्पष्टतया मंत्रियोंका यह अधिकार और कर्त्तव्य होगा कि बंबईमें रहनेवाले ब्रिटिश प्रतिनिधिके द्वारा वे सार्वभौम सत्तासे राजकोटकी स्थिति सुधारनेको कहें। और सार्वभौम सत्ताका यह फर्ज होगा कि वह या तो ऐसा करे या मंत्रियोंको खो दे। क्योंकि हरएक मंत्री पर ऐसी हरएक बातका असर पड़े बिना नहीं रह सकता, जो उसके प्रान्तकी भौगोलिक सीमामें हो, फिर चाहे वह उसके कानूनी दायरेके बाहर ही क्यों न हो,—खासकर जब कि वह बात उसकी शालीनतापर भी चोट पहुँचाती हो। उन भागोंमें उत्तरदायी शासन है या नहीं, यह देखना चाहे मंत्रियोंका काम न भी हो; लेकिन अगर उन भागोंमें प्लेग फैले या मारकाट मचे तो उसपर ध्यान देना उनका काम जरूर है, नहीं तो उनके शासनको लानत है और वह खाली भ्रम ही है। इस प्रकार उड़ीसाके मंत्री अगर तालचेरके २६,००० निराश्रितोंको उनकी रक्षा और भाषण तथा सामाजिक व राजनीतिक रूपमें हिलने-मिलनेकी आजादीका पूरा आश्वासन देकर उनके घर पहुँचानेमें कामयाब न हों, तो वे आरामके साथ अपनी कुर्सियोंपर नहीं बैठे रह सकते।

जो कांग्रेस आज ब्रिटिश सरकारके साथ मिलकर काम कर रही है वह ब्रिटिश सरकारके सामन्त देशी राज्योंके अन्दर दुश्मन और विदेशी मानी जाय, यह बात तो असह्य है।

राजकोटमें ब्रिटिश रेजिडेण्टकी प्रेरणासे प्रजाकी आजादीके फरमानमें जो विश्वास-घात किया गया है वह ऐसी गलती है जिसको यथासंभव जल्दी से जल्दी दुरुस्त करना ही चाहिये। यह तो ऐसा जहर है जो सारे शरीरमें व्याप्त हो रहा है। क्या वाइसराय महोदय राजकोटके महत्त्वको समझकर इस जहरको दूर करेंगे ?

हरिजन सेवक
४ फरवरी, १९३९

देशी राज्योंमें 'गुण्डाशाही'

गांधीजीने वर्धासे गत ९ फरवरीको नीचे लिखा वक्तव्य प्रकाशित किया है—

हालमें राजकोट और जयपुरपर मैंने जो कई लेख लिखे हैं उनके सम्बन्धमें मेरे आलो-चकोंने मुझपर यह आरोप किया है कि मैंने उन लेखोंमें असत्य और हिंसासे काम लिया है। ऐसे आलोचकोंको जवाब देना मेरा फर्ज है। सचमुच जबसे मैंने सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश किया है, तभीसे मेरे सम्बन्धमें इस किस्मके आरोप किये गये। मगर मैं यह सहर्ष कह सकता हूँ कि बादको मेरे आलोचकोंको यह कबूल करना पड़ा कि मैं असत्यपूर्ण और हिंसात्मक भाषा इस्तेमाल करनेका दोषी नहीं था, और मेरे वक्तव्योंका आधार उनमें मेरा विश्वास होता था, द्वेषकी भावना उनमें कभी नहीं होती थी।

आज भी ठीक वही बात है। मैं अपनी जिम्मेवारी भलीभाँति समझता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरे अनेक देशवासी मेरे वक्तव्योंमें असंदिग्ध श्रद्धा रखते हैं। मेरे वक्तव्योंके समर्थनमें मुझसे प्रमाण माँगे गये हैं। मैंने प्रमाण पेश भी कर दिये हैं।

सरदार पटेलने राजकोटपर जो वक्तव्य दिया है, उसमें रेजिडेण्टके उन शब्दोंको भी उद्धृत कर दिया है, जो उसने कांग्रेस और उनके खुदके बारेमें कहे थे। रेजिडेण्ट, ठाकुर साहब और उनके सलाहकारोंके बीच, जिनमें सर पेट्रिक केडेल भी थे, जो बातचीत हुई थी, उसका तमाम खुलासा मेरे पास है। अभी तो नहीं, लेकिन अगर जरूरत समझी गयी तो उसे मौका आनेपर प्रकाशित कर दिया जायगा।

संगठित गुण्डाशाही प्रदर्शित करनेके सम्बन्धमें हकीकत प्रकाशित कर दी गयी है। मैं मानता हूँ कि इसमें रेजिडेंटका हाथ है, क्योंकि उसीने रियासतमें एजेंसीकी पुलिसको भेजा है। अतः उसके एजेण्टोंकी कारगुजारियोंकी जिम्मेवारी उसपर होनी ही चाहिये।

इसी तरह, जयपुरमें जो कुछ हो रहा है, उसकी जिम्मेदारी ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीपर है। सेठ जमनालाल बजाजको 'फुटबाल' बनाकर बार-बार जयपुरसे ठुकरा देना, जब कि उन्हें अपनी जन्मभूमिमें प्रवेश करनेका पूरा हक है, निश्चय ही निहायत अनुचित कार्रवाई है।

अगर मैं ऐसे कामोंका चित्रण करूँ, तो मुझे अपनी भाषामें हिंसाके काम लेनेका दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिये। हिंसाका दोषी तो मैं तब हूंगा, अगर मैं काठियावाड़के रेजिडेंट या जयपुरके प्रधान मन्त्रीके खिलाफ कोई द्वेष-भावना फैलानेका काम करूँ। क्योंकि मुझे यह मालूम होना चाहिये कि वे, संभव है, कि बहुत ही आदरणीय व्यक्ति हों, पर उनका आदरणीय होना राजकोट या जयपुरकी प्रजाके लिए किस कामका? सत्य और अहिंसाके पुजारी होनेके नाते, मेरा काम तो यह है कि मैं बगैर किसी भयके जो नग्न सत्य हो उसे जाहिर कर दूँ? साथ ही अन्याय करनेवालोंके प्रति असद्‌भावना भी प्रदर्शित न करूँ। मेरी अहिंसाको सत्यपर मुलम्मा चढ़ानेकी जरूरत नहीं। इसलिए मुझपर यह इलजाम नहीं लगाया जाना चाहिये कि मैं किसी कौमके साथ दुश्मनी रखता हूँ।

नग्न सत्यको छिपाकर या उसपर मुलम्मा चढ़ाकर मैं लोगोंको हिंसाके पथसे हटानेमें सफल नहीं हो सकता। यह कहकर या खुद अपने आचरणके द्वारा दिखाकर कि घोर-से-घोर अन्याय करनेवालोंका भी भला चाहना न केवल उचित ही है, बल्कि लाभकारी भी है, मैं प्रजाको हिंसापथसे हटानेकी जरूर आशा करता हूँ।

नरेशोंकी रक्षा करना सार्वभौम सत्ताका फर्ज है, मगर उनके अधीन रहनेवाली प्रजाकी रक्षा करना भी निश्चय ही उसका उतना ही फर्ज है। मुझे लगता है कि सार्वभौम सत्ताका यह भी फर्ज है कि वह उस समय नरेशोंकी सहायता करना छोड़ दे, जब यह साबित हो जाय कि अमुक राजा अपनी प्रजाको प्रारंभिक अधिकार देनेके लिए भी तैयार नहीं है और उसके एक नागरिकको बुरी तरह इधर-उधर घुमाया जा रहा है, और अदालतमें भी उसे पैर नहीं रखने दिया जाता, जैसा कि जयपुरमें हो रहा है।

हिन्दुस्तानमें रियासतकी घटनाओंपर मैं जितना ही अधिक विचार करता हूँ, मुझे तो ऐसा दिखायी देता है कि अगर सार्वभौम सत्ता इन दुःखद घटनाओंको लाचारीकी दृष्टिसे देखती रही, तो इस अभागे देशका भविष्य अंधकारमय ही समझना चाहिये। राजकोट और जयपुरकी घटनाओंसे हमें पता चल सकता है कि दूसरे राज्योंमें भी क्या-क्या होनेवाला है। महाराजा बीकानेरने नरेशोंको सलाह तो यह ठीक ही दी है कि उन्हें मिलकर काम करना चाहिये, पर नेतृत्व उन्होंने गलत दिया।

पुचकारने और दुतकारनेकी नीतिसे नरेश कहींके भी न रहेंगे। इससे तो कटुता और जिद्दो-जहद ही पैदा हुई है। संभव है कि रियासतोंकी प्रजा, नरेशोंकी तरह, मिलकर काम न कर सके, पर ये उनके या ब्रिटिश भारतके लोगोंके साथ विदेशियोंका-सा व्यवहार न कर सकेंगे। आज तमाम नरेश मिल भी जायें, तब भी प्रजामें इतनी काफी जागृति पैदा हो चुकी है कि उनके द्वारा किये जानेवाले दबावका भी वह डटकर मुकाबला कर लेगी।

हरिजन सेवक

११ फरवरी, १९३९

अहिंसाका अमल

"यूरोपके संकट और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तके बारेमें 'हरिजन'के हालके अंकोंमें आपने जो कुछ लिखा, उसे मैं बड़ी दिलचस्पीके साथ पढ़ता रहा हूं। लेकिन अहिंसाकी समस्यामें एक बात ऐसी है, जिसके बारेमें समय होता तो मैं सेगाँवमें ही आपसे बातचीत करता, क्योंकि उसका उल्लेख आप या तो कभी करते ही नहीं, या कभी कदाचित ही करते हैं। आप कहते हैं कि अहिंसात्मक असहयोगको जिस रूपमें आपने पेश किया है उस रूपमें वह उस हिंसाका जवाब है जो अब सारे संसारका ध्वंस करनेपर उतारू है। ऐसी भावना और ऐसे कामका जो महान असर हो सकता है उसके बारेमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन शत्रु-मित्र सबके लिए एक समान निःस्वार्थ प्रेमकी अहिंसात्मक भावनाको सफल होनेके लिए क्या यह जरूरी नहीं है कि वह शासनके उदार, लोकतन्त्रात्मक और वैध रूपमें प्रदर्शित हो? कानून और सरकारके बगैर समाज कायम नहीं रह सकता। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तबतक स्थापित नहीं हो सकती, जबतक विभिन्न राष्ट्र वैधानिक शासनकी ऐसी पद्धतिको स्वीकार न कर ले जो उन्हें एकता और कानून प्रदान करके उनकी अराजकताका खात्मा कर दे। इसमें कोई शक नहीं कि किसी-न-किसी दिन ईश्वरीय कानून मनुष्योंके दिल व दिमागोंपर इस तरह अंकित हो जायगा कि उसका पालन करानेके लिए किसी मानवी कानून या शासनकी कोई जरूरत नहीं होगी, बल्कि व्यक्तिगत रूपमें वे खुद ही उसके निर्देशक बन जायेंगे। लेकिन यह अन्तिम बात है। इस स्वर्गीय लक्ष्यकी ओर बढ़नेका आरंभ इस रूपमें होना जरूरी है कि सबसे पहले विविध जातियाँ, धर्म और राष्ट्र एक ऐसे विधानके अन्तर्गत एकता रखनेको रजामंद हों, जिसके द्वारा उनकी एकता और पारस्परिक सदस्यता कायम हो। जिन कानूनोंके मातहत वे उनपर सार्वजनिक विचारोपरान्त बहुमतके निश्चयके किसी रूपमें जारी होते हैं और जहां स्वेच्छापूर्वक उनका पालन नहीं होता वहाँ, समझाने-बुझाने और उदाहरण पेश करनेसे काम न चलनेपर युद्धके रूपमें नहीं बल्कि पुलिसके बलपर उनका पालन कराया जाता है। खुदमुख्तार राष्ट्रोंके बीच रचनात्मक अहिंसाकी भावनासे काम लेनेसे हम संघ-शासन (फेडरेशन) के किसी-न-किसी रूपपर ही पहुँचेंगे। क्योंकि ऐसा किये बगैर वह कामयाब नहीं हो सकती। वह प्रभावकारक रूपमें कायम है, इसका सबूत संघात्मिक पद्धतिका सामने आना होगा। इस प्रकार यूरोपकी समस्याका एकमात्र सच्चा हल यही है कि २५ प्रजाओं और राष्ट्रोंका एक प्रजातंत्रत्मक विधानके मातहत एक संघ बनाया जाय, जो ऐसी सरकारका निर्माण करे जो यूरोपकी समस्याओंपर निगाहकर उनके प्रतिस्पर्धी और परस्पर-विरोधी राष्ट्रोंके रूपमें उनके लिए कानून बना सके। इसी रूपमें भारतीय समस्याका एकमात्र हल यह है कि ग्रेट ब्रिटेनके नियंत्रणके लिए वहाँ डेमोक्रेटिक कॉन्स्टीट्यूशन कायम किया जाय। और जो यूरोप भारतके लिए ठीक है, कालांतरमें वही सारी दुनियाके लिए ठीक और युद्ध रोकनेका एकमात्र अंतिम साधन है। दिल और दिमागमें ऐसा परिवर्तन करनेका, जिससे राष्ट्र संघीय लोकतंत्रात्मक विधानको स्वीकार कर सकें, अहिंसात्मक असहयोग सर्वोत्तम और शायद एकमात्र

साधन है। लेकिन लोकतंत्र संघ-शासनकी प्राप्तिकी ऐसी आवश्यकता है, जिससे इसकी सफलताका निश्चय होता है और जिसके बिना यह कामयाब नहीं हो सकती। इस बातपर मैं हमेशा बड़ी दिलचस्पीसे ध्यान देता रहा हूँ और निश्चय ही मुझे आश्चर्य है कि आप यह खयाल करते मालूम पड़ते हैं कि अहिंसात्मक असहयोगका अमल अपनेमें ही काफी है और यह आप कभी नहीं कहते कि मनुष्यों, जातियों, धर्मों राष्ट्रोंको मिलानेवाली लोकतंत्रीय शासन-पद्धति ही वह लक्ष्य है जिसपर इसे ले जाना चाहिये, हालाँकि उसकी प्राप्ति हृदयके आध्यात्मिक परिवर्तनके फलस्वरूप ही संभव है और बल या हिंसा अथवा चालाकीसे उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता।

"भारतीय शासन-विधानके पक्षमें अप्रत्यक्ष रूपसे दलील करनेके लिए मैं यह नहीं लिख रहा हूँ, हालाँकि उस समस्यासे भी स्पष्ट ही इसका संबंध है। गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्ट लोकतंत्रीय संघ शासनके सिद्धांतका स्पष्टत: एक बहुत अपूर्ण रूप है, जिसको चलाना हो तो तेजीके साथ उसका विकास होना आवश्यक है। उसके लिए जो खास दलील हमेशा मैंने दी है वह यह है कि मौजूदा हालतमें प्रान्तों, रियासतों, मुसलमानों और हिन्दुओंको एक सूत्रमें पिरोनेवाले एकमात्र वैधानिक समझौतेका वही ऐसा आधार है जिसको अमली रूप दिया जा सकता है और जैसा कि आमतौरपर समझा जाता है उससे कहीं ज्यादा विकासके बीज उसमें मौजूद हैं। अगर आपका आध्यात्मिक संदेश लोगोंको इसके लिए प्रेरित करे, तो इसका विकास शीघ्रतासे और आसानीसे हो सकता है। मेरा उद्देश्य इस वैधानिक समस्याके बारेमें आपकी कोई राय प्राप्त करना नहीं है, लेकिन इस पत्रके पूर्व भागमें जिस बृहत्तर प्रश्नका समावेश है उसका मैं जरूर जबाब चाहता हूँ।"

लार्ड लोथियनका यह पत्र मुझे जनवरीकी शुरूआतमें मिला था, लेकिन आवश्यक कार्योंके कारण इससे पहले मैं इसमें उठाये हुए एक महत्वपूर्ण सवालकी चर्चा न कर सका।

निश्चित रूपसे अहिंसापर निर्भर समाजमें शासनका रूप क्या हो, इस बारेमें कुछ लिखनेसे मैं जान-बूझकर बचता रहा हूँ। सारा समाज अहिंसापर उसी प्रकार कायम है जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षणसे पृथ्वी अपनी स्थितिमें बनी हुई है। लेकिन जब गुरुत्वाकर्षणके नियमका पता लगा, तो इस शोधके ऐसे परिणाम निकले, जिनके बारेमें हमारे पूर्वजोंको कुछ भी ज्ञान न था। इसी प्रकार जब निश्चित रूपसे अहिंसाके नियमानुसार समाजका निर्माण होगा तो उसका ढाँचा खास-खास बातोंमें आजसे भिन्न होगा। लेकिन पहलेसे ही मैं यह नहीं कह सकता कि सम्पूर्णतया अहिंसापर निर्भर शासनका रूप कैसा होगा।

आज तो अहिंसाके नियमकी उपेक्षा करके हिंसाको ऐसा स्थान दिया हुआ है मानो वही शाश्वत नियम है। इसलिए इंगलैण्ड और फ्रांसमें जिन लोकतंत्रोंको हम काम करते हुए देखते हैं वे केवल नामके ही लोकतंत्र हैं। क्योंकि सभी हिंसापर नाजी जर्मनी, फासिस्ट इटली या सोवियट रूससे कुछ ही कम निर्भर हैं। फर्क सिर्फ यह है कि पिछले तीन देशोंमें हिंसा लोकतंत्रीय देशोंकी बनिस्बत कहीं ज्यादा अच्छे रूपमें संगठित है। फिर भी हम देखते हैं कि शस्त्रास्त्रके मामलेमें एक-दूसरेसे बढ़ जानेकी आज पागलोंकी तरह होड़ मच रही है। और संघर्ष

होनेपर, जिसका कि एक दिन होना अनिवार्य है, अगर इन लोकतंत्रोंकी विजय हुई तो वह सिर्फ इसलिए होगी, क्योंकि उनके पीछे यह ख्याल करनेवाली प्रजाओंका सहारा होगा कि अपने यहाँके शासनमें हमारी भी आवाज है, जब कि दूसरे तीन राष्ट्रोंमें वहाँकी प्रजाएँ ही अपने यहाँकी तानाशाहियोंके खिलाफ विद्रोह कर दें।

मैं यह मानता हूँ कि अहिंसाको राष्ट्रीय पैमानेपर स्वीकृत किये बगैर वैधानिक या लोकतंत्रीय शासन जैसी कोई चीज नहीं हो सकती, इसलिये मैं अपनी शक्तिको इस बातका प्रतिपादन करनेमें लगाता हूँ कि अहिंसा हमारे व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवनका नियम है। मैं समझता हूँ कि मैंने प्रकाश देख लिया है, हालाँ कि देखा है कुछ धुँधले रूपमें ही। फिर भी सावधानीके साथ इसीलिये लिखता हूँ, क्योंकि मैं यह ढोंग नहीं करता कि मैंने उस सारे नियमको जान लिया है। जहाँ अपने प्रयोगों की सफलताओंको मैं जानता हूँ वहाँ अपनी असफलताओंका भी मुझे ज्ञान है। लेकिन सफलताएँ इतनी काफी हैं कि मेरे अन्दर एक अमर आशा पैदा हो गयी है।

यह मैं अक्सर कहता रहा हूँ कि अगर साधनोंकी सावधानी रक्खी जाय तो ध्येय अपनी फिक्र खुद कर लेगा। अहिंसा साधन है, और लक्ष्य हरएक राष्ट्रके लिए है पूर्ण स्वाधीनता। अन्तर्राष्ट्रीय संघ तभी होगा जब कि उसमें शामिल होनेवाले राष्ट्र पूरी तरह स्वाधीन हों। जो राष्ट्र अहिंसाको जितना हृदयंगम करेगा उतना ही वह स्वाधीन होगा। एक बात निश्चित है। अहिंसापर आधार रखनेवाले समाजमें छोटे-से-छोटा राष्ट्र भी बड़े-बड़े राष्ट्रके समान ही होगा। बड़प्पन और छोटेपनका भाव बिलकुल नहीं होगा।

इसपरसे यह परिणाम निकलता है कि गवर्नमेण्ट आफ इंडिया एक्ट तो खाली दिखावा है, जिसका स्थान एक ऐसे एक्टको लेना चाहिये जो खुद राष्ट्रके द्वारा ही बनाया जाय। जहाँतक प्रान्तीय स्वराजका सम्बन्ध है, किसी हदतक उसको सम्हालना सम्भव लगा, वैसे उसके अमलका मेरा अपना जो अनुभव है वह किसी भी प्रकार सुखद नहीं है।

कांग्रेसी सरकारोंका जनतापर वैसा अहिंसात्मक प्रभाव नहीं है जिसकी कि मैंने उनसे आशा की थी।

लेकिन संघ-शासनका ढाँचा तो मेरे लिए सोचनेके लायक भी नहीं है, क्योंकि उसमें अ-समानोंकी साझीदारीकी कल्पना की गयी है, फिर वह चाहे ढीली ही क्यों न हो। रियासतें कितनी असमान हैं, इसका ऐसे बुरे रूपमें प्रदर्शन किया जा रहा है जिसके लिए मैं तैयार नहीं था। इसलिए गवर्नमेण्ट आफ इंडिया ऐक्टमें जिस संघ-शासनका समावेश है उसे मैं बिलकुल असंभव मानता हूँ।

इस प्रकार अपने आप यह परिणाम निकलता है कि जबतक अहिंसाको खाली नीतिके बजाय एक जीवित शक्ति यानी अटूट ध्येयके रूपमें स्वीकार न कर लिया जाय, तबतक मुझ जैसोंके लिए, जो अहिंसाके हामी हैं, वैधानिक या लोकतंत्रीय शासन एक दूरका स्वप्न ही है। जब कि मैं विश्व-

व्यापी अहिंसाका हामी हूँ, मेरा प्रयोग हिन्दुस्तान तक ही सीमित है। यहाँ उसे सफलता मिली, तो संसार बिना किसी प्रयत्नके उसे स्वीकार कर लेगा। मगर इसमें एक बड़ा 'लेकिन' मौजूद है। विघ्नोंकी मुझे चिन्ता नहीं। घोर अन्धकारमें भी मेरा विश्वास बड़ा उज्ज्वल है।

हरिजन सेवक
११ फरवरी, १९३९

४३

यहाँ क्या अहिंसा नहीं है?

अन्नामलाई यूनिवर्सिटीके एक शिक्षकका पत्र मुझे मिला है, जिसमें वह लिखते हैं:—

"गत नवम्बरकी बात है, पाँच या छ: विद्यार्थियोंके एक समूहने संगठित रूपसे यूनिवर्सिटी-यूनियनके सेक्रेटरी—अपने ही साथी एक विद्यार्थीपर हमला किया। यूनिवर्सिटीके वाइस-चांसलर श्री श्रीनिवास शास्त्रीने इसपर सख्त ऐतराज किया और उस समूहके नेताको यूनिवर्सिटीसे निकाल दिया तथा बाकीको यूनिवर्सिटीके इस तालीमी सालके अन्ततक पढ़ाईमें शामिल न करनेकी सजा दी।

"सजा पानेवाले इन विद्यार्थियोंसे सहानुभूति रखनेवाले इनके कुछ मित्रोंने इसपर क्लासोंसे गैरहाजिर रहकर हड़ताल करनी चाही। दूसरे दिन उन्होंने अन्य विद्यार्थियोंसे सलाह की और उन्हें भी इसके विरोध-स्वरूप हड़ताल करनेके लिए समझाया-बुझाया। लेकिन इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली, क्योंकि विद्यार्थियोंके बहुमतको लगा कि छ: विद्यार्थियोंको जो सजा दी गयी है, वह ठीक ही है और इसलिए उन्होंने हड़तालियोंका साथ देने या उनके प्रति किसी तरह की हमदर्दी जाहिर करनेसे इन्कार कर दिया।

"इसलिए दूसरे दिन कोई २० फीसदी विद्यार्थी पढ़ने नहीं आये, बाकी ८० फीसदी हस्बमामूल हाजिर रहे। यहाँ यह बता देना ठीक होगा कि इस यूनिवर्सिटीमें कुल ८०० के करीब विद्यार्थी हैं।

"अब यह निकला हुआ विद्यार्थी होस्टलमें आया और हड़तालका संचालन करने लगा। हड़तालको नाकामयाब होते देख, शामके वक्त उसने दूसरे साधनोंका सहारा लिया। जैसे, उदाहरणके लिए, होस्टलके चार प्रमुख रास्तोंपर लेट जाना, होस्टलके कुछ दरवाजोंको बन्द कर देना, और कुछ छोटे लड़कोंको खासकर निचले दर्जेके बच्चोंको, जिनको की अपनी बात मानने के

लिये डराया-धमकाया जा सकता है, उनके कमरोंमें बन्द कर देना, आदि। इससे तीसरे पहर कोई पचास-साठ व्यक्ति बाकी विद्यार्थियोंको होस्टलसे बाहर जानेसे रोकनेमें सफल हो गये।

"अधिकारियोंने इस तरह दरवाजे बन्द देखकर 'फेनसिंग' को खोलना चाहा। जब यूनिवर्सिटीके नौकरोंकी मददसे वे फेनसिंगको हटाने लगे, तो हड़तालियोंने उससे बने हुये रास्तों पर पहुँचकर दूसरोंको इधरसे उधर कालेज जानेसे रोका। अधिकारियोंने धरना देनेवालोंको पकड़कर हटाना चाहा, लेकिन वे कामयाब न हो सके। तब परिस्थितिको अपने काबूसे बाहर पाकर उन्होंने इस गड़बड़की जड़ उस निकाले हुये विद्यार्थीको होस्टलकी हदसे हटानेकी पुलिससे प्रार्थना की, जिसपर पुलिसने उसे वहांसे हटा दिया। इसपर स्वभावतः कुछ और भी विद्यार्थी खीझ उठे और हड़तालियोंके प्रति सहानुभूति दिखाने लगे। अगले दिन हड़तालियोंके होस्टलकी सारी 'फेनसिंग' हटायी हुई मिली तब वे कालेजकी हदमें घुस गये और पढ़ाईके कमरोंमें जानेवाले रास्तोंपर लेटकर धरना देने लगे। तब श्री श्रीनिवास शास्त्रीने डेढ़ महीनेकी लम्बी छुट्टी करके २९ नवम्बरसे १६ जनवरीतक यूनिवर्सिटीको बन्द कर दिया।

"अखबारोंको उन्होंने एक वक्तव्य देकर विद्यार्थियोंसे अपील की कि वे छुट्टीके बाद घरसे शिष्ट और सुखद भावनाओंके साथ पढ़नेके लिये आयें।

"लेकिन कालेजके फिरसे खुलनेपर इन विद्यार्थियोंकी हलचल और भी तेज हो गयी, क्योंकि छुट्टीमें इन्हें ....से और सलाह मिल गयी थी। मालूम पड़ता है कि वे राजाजीके भी पास गये थे, लेकिन उन्होंने हस्तक्षेप करनेसे इन्कार कर वाइस चांसलरका हुक्म मानानेके लिये कहा। उन्होंने वाइस चांसलरकी मार्फत हड़तालियोंको दो तार भी दिये, जिनमें उनसे हड़ताल बन्द करके शान्तिके साथ पढ़ाई शुरू कर देनेकी प्रार्थना की।

"अच्छे विद्यार्थियोंके सामान्य बहुमतपर, हालां कि इन तारोंका अच्छा असर पड़ा, मगर हड़तालिये अपनी बातपर अड़े रहे।

धरना देना अब भी जारी है। यह तो लगभग मामूली हो गया है, और लगभग पचास सहानुभूति रखनेवाले ऐसे हैं जो सामने आकर हड़ताल करनेका साहस तो नहीं रखते पर अन्दर ही अन्दर गड़बड़ मचाते रहते है।

"ये रोज इकट्ठे होकर आते और क्लासोंके दरवाजेपर पहली मंजिलकी क्लासोंपर जाने वाले जीनेपर लेट जाते, और इस तरह विद्यार्थियोंको क्लासोंमें जानेसे रोकते हैं। लेकिन शिक्षक-दूसरी ऐसी जगह जाकर पढ़ाई शुरू कर देते हैं कि धरना देनेवाले उनसे पहले नहीं पहुंच पाते। नतीजा यह होता है कि हर घंटे पढ़ाईका स्थान यहांसे वहां बदलना पड़ता है, और कभी-कभी तो खुली जगहमें पढ़ाना पड़ता है, जहां कि धरना देनेवाले लेट नहीं सकते। ऐसे अवसरोंपर वे शोर-गुल मचाकर पढ़ाईमें विघ्न डालते है, और कभी-कभी अपने शिक्षकोंका व्याख्यान सुनते हुये विद्यार्थियोंको परेशान कर डालते हैं।

"कल एक नयी बात हुई। हड़तालिये क्लासोंके अन्दर घुस आये और लेटकर चिल्लाने

लगे, और कुछ हड़तालियोंने तो, मैंने सुना है, शिक्षकके आनेसे पहले ही बोर्डोंपर लिखना भी शुरू कर दिया था। कमजोर शिक्षक अगर कहीं मिल जाते हैं, तो इनमेंसे कुछ हड़तालियें उन्हें डराने फुसलानेकी भी कोशिश करते हैं। सच तो यह है कि उन्होंने वाइसचांसलरको भी यह धमकी दी थी कि अगर उन्होंने हमारी मांगे मंजूर नही की, तो हिंसा और रक्तपातका सहारा लिया जायगा।

"दूसरी महत्वपूर्ण बात जो मुझे आपको कहनी चाहिये वह यह है कि हड़तालियोंको कुछ नगरसे बाहरी आदमी मिल जाते हैं—जो यूनिवर्सिटीमें घुसनेके लिये गुंडोंको भाड़ेपर लाते हैं। असलियत तो यह है कि मैंने बहुतसे ऐसे गुन्डों और दूसरे आदमियोंको, जो कि विद्यार्थी नहीं हैं, बरामदेके अन्दर और दूसरे क्लासोंके कमरोंके पास भी घूमते हुये देखा है। इसके अलावा विद्यार्थी वाइस-चांसलरके बारेमें अपशब्दोंका भी व्यवहार करते हैं।

"अब जो कुछ मैं कहना चाहता हूँ वह यह है—हम सब याने कई शिक्षक और विद्यार्थियों-की भी एक बड़ी तादाद यह महसूस कर रही है कि हड़तालियोंकी ये प्रवृत्तियां सत्यपूर्ण और अहिंसात्मक नहीं हैं और इसलिये सत्याग्रहकी भावनाके विरुद्ध हैं।

"मुझे विश्वस्त रूपसे मालूम हुआ है कि कुछ हड़तालिये विद्यार्थी इसे अहिंसा ही कहते हैं। उनका कहना है कि अगर महात्माजी यह घोषणा कर दें कि यह अहिंसा नहीं है तो हम इन प्रवृत्तियोंको बन्द कर देंगें।"

यह पत्र १७ फरवरीका है और काका कालेलकरको लिखा गया है, जिन्हें कि वह शिक्षक अच्छी तरह जानते हैं। इसके जिस अंशको मैंने नहीं छापा उसमें इस बारेमें काका साहबकी राय पूछी गयी है कि विद्यार्थियोंके इस आचरणको क्या अहिंसामय कहा जा सकता है और भारतके कितने ही विद्यार्थियोंमें अवज्ञाकी जो भावना आ गई है उस पर अफसोस जाहिर किया गया है।

पत्रमें उन लोगोंके नाम भी दिये गये हैं, जो हड़तालियोंको अपनी बातपर अड़े रहनेके लिये उत्तेजना दे रहे हैं। हड़तालके बारेमें मेरी राय प्रकाशित होनेपर किसीने, जो स्पष्टतया विद्यार्थीही मालूम पड़ता है, मुझे एक गुस्सेसे भरा हुआ तार भेजा जिसमें लिखा था कि हड़तालियों का व्यवहार पूर्ण अहिंसात्मक है। लेकिन ऊपर मैंने जो विवरण उद्धृत किया है वह अगर सच है तो मुझे कहनेमें कोई पशोपेश नहीं है कि विद्यार्थियोंका व्यवहार सचमुच हिंसात्मक है। अगर कोई मेरे घरका रास्ता रोक दे तो निश्चय ही उसकी हिंसा वैसी ही कारगर होगी जैसे दरवाजेसे बल-प्रयोग द्वारा मुझे धक्का देनेमें होती है।

विद्यार्थियोंको अगर अपने शिक्षकोंके खिलाफ सचमुच कोई शिकायत है, तो उन्हें हड़ताल ही नहीं बल्कि अपने स्कूल या कालेजपर भी धरना देनेका हक है; लेकिन इसी हद तक कि पढ़नेके लिये जानेवालोंसे विनम्रताके साथ न जानेकी प्रार्थना करें। बोलकर या परचे बाँटकर वे ऐसा कर सकते हैं। लेकिन उन्हें रास्ता नहीं रोकना चाहिये, न उनपर कोई अनुचित दबाव ही डालना चाहिये जो कि हड़ताल करना नहीं चाहते।

और हड़ताल भला विद्यार्थियोंने की किसके खिलाफ है? श्री श्रीनिवास शास्त्री भारतके एक सर्वश्रेष्ठ विद्वान हैं। शिक्षकके रूपमें उनकी तभीसे ख्याति रही है,जब कि इनमेसे बहुतेरे विद्यार्थी या तो पैदाही नहीं हुये थे या अपनी किशोरावस्थामें ही थे। उनकी महान विद्वत्ता और उनके चरित्रकी श्रेष्ठता दोनों ही ऐसी चीजें हैं जिसके कारण संसारकी कोई भी यूनिवर्सिटी उन्हें अपना वाइस-चांसलर बनानेमें गौरवानुभव ही करेगी।

काका साहबको पत्र लिखनेवालोंने अगर अन्नामलाई यूनिवर्सिटीकी घटनाओंका सही विवरण दिया है तो मुझे लगता है कि शास्त्रीजीने जिस तरह परिस्थितिको सम्हाला वह बिलकुल ठीक है। मेरी रायमें विद्यार्थी अपने आचरणसे खुद अपनी ही हानि कर रहें हैं। मैं तो उस मतको माननेवाला हूँ जो शिक्षकोंके प्रति श्रद्धा रखनेमें विश्वास करता है। यह तो मैं समझ सकता हूँ कि जिस स्कूलके शिक्षकके प्रति मेरे मनमें सम्मानका भाव न हो उसमें मैं न आऊँ, लेकिन अपने शिक्षकोंकी बेइज्जती या उनकी अवज्ञाको मैं नहीं समझ सकता। ऐसा आचरण तो असज्जनोचित है और असज्जनता सभी हिंसा है।

हरिजन-सेवक
४ मार्च, १९३९

❀

क्या करें?

एक प्रिंसपलने, जो अपना नाम जाहिर नहीं करना चाहते हैं, नीचे लिखा महत्वपूर्ण पत्र भेजा है:—

"निम्नलिखित आवश्यक प्रश्नोंका हल करनेके लिये क्षुब्ध मन दूसरोंकी तर्क-संगत सम्मति चाहता है। "शान्ति संघ लोम प्लेज यूनियन" जिसे किसीभी परिस्थितिमें हिंसाका आश्रय लेने से इंकार करके युद्धका विरोध करनेके लिये स्वर्गीय डिक शेफर्डने कायम किया था कि प्रतिज्ञाका पालन करना क्या हमारे संसारकी मौजूदा हालतमें ठीक और व्यवहारिक तरीका है?"

'हाँ' के पक्षमें नीचे लिखी दलीलें हैं—

(१) संसारके महान् आध्यात्मिक शिक्षकोंने अपने आचरण द्वारा हमें यह शिक्षा दी है कि किसी बुराईका अन्त केवल अच्छे उपायोंसे ही हो सकता है, बुरे उपायोंसे हर्गिज नहीं, और किसी भी तरहकी हिंसा (खासकर युद्धकी, चाहे वह एकमात्र तथाकथित आत्मरक्षणके लिये ही क्यों न हो) निःसन्देह बुरा उपाय ही है; फिर उसका उद्देश्य चाहे कुछ भी हो। इसलिये हिंसाका प्रयोग तो सदा ही गलत है।

(२) वर्तमान हिंसा और मुसीबतके वास्तविक कारण युद्धसे कभी दूर नहीं हो सकते। 'युद्धका अन्त करनेके लिये' प्रयोग होनेवाले पिछले युद्धने यह बात भलीभांति सिद्ध कर दी है और यही हमेशा सत्य रहेगी। इसलिये हिंसा अव्यवहारिक है।

(३) जो लोग यह महसूस करते हैं कि (वे चाहे छोटी-छोटी बातोंके लिये न लड़े, फिर भी) स्वतंत्रता और प्रजातंत्रकी रक्षाके लिये तो उन्हें लड़ना ही चाहिये, वे भ्रममें हैं। मौजूदा परिस्थितियोंमें युद्धका अन्त चाहे विजयमें ही क्यों न हो, फिर भी उससे हमारी रही-सही स्वतंत्रताओंका उससे भी अधिक निश्चित रूपमें अन्त हो जाता है जितना कि किसी आक्रमणकारीकी जीतसे होता। क्योंकि आजकल सफलताके साथ कोई युद्ध तबतक नहीं लड़ा जा सकता जबतक सारी जनताको फौजी न बना डाला जाय। उस फौजी समाजमें, जो कि दूसरे युद्धके फलस्वरूप जरूर पैदा होगा, चाहे जीत उसमें किसीकी क्यों न रहे, बन्धक बनकर रहनेकी अपेक्षा जान-बूझकर अहिंसात्मक रूपमें अत्याचारका प्रतिरोध करते हुये मर जाना कहीं बेहतर है।

'नहीं' के पक्षमें नीचे लिखी दलीलें हैं—

(१) अहिंसात्मक प्रतिरोध उन लोगोंके मुकाबिलेमें ही कारगर हो सकता है, जिनपर कि नैतिक और दया-मायाके विचारोंका असर पड़ सकता है। फासिज्मपर ऐसी बातोंका न केवल कोई असर ही नहीं पड़ता, बल्कि फासिस्ट लोग खुले आम उसे कमजोरीका निशान बतलाकर उसकी खिल्ली उड़ाते हैं। सब तरहके प्रतिरोध खत्म करनेमें किसी पशोपेशकी, या उसके लिये चाहे जितनी पाशविकतासे काम लेनेकी वह परवाह नहीं करता। इसलिये फासिज्मके आगे अहिंसात्मक प्रतिरोध ठहर नहीं सकेगा। अतएव अहिंसात्मक प्रतिरोध वर्तमान परिस्थितियोंमें बुरी तरह अव्यवहारिक है।

(२) लोकतंत्रीय रक्षाके लिये होनेवाले हिंसात्मक प्रतिरोधमें (याने युद्ध या युद्ध की आमलाजिमी भर्तीके समय) सहयोग देनेसे इन्कार करना एक तरहसे उन्हीं लोगोंकी मदद करना है, जो स्वतंत्रताको नष्टकर रहे हैं। फासिस्ट आक्रमणको निःसन्देह इस बातसे बड़ी उत्तेजना मिली है कि प्रजातंत्रमें जनताके ऐसे भी आदमी रहे हैं जो अपनी रक्षाके लिये लड़ना नहीं चाहते और युद्ध होनेपर भी अपनी सरकारोंका विरोध करेंगे और इस प्रकार युद्ध शुरु होने या किसी तरहकी लाजिमी सैनिक भर्ती होनेपर अपनी सरकारोंकी निन्दा करेंगे (और इस प्रकार रुकावट चाहेंगे)। ऐसी हालतमें, रक्षाके हिंसात्मक उपायोंपर जान-बूझकर आपत्ति करनेवाला न केवल शान्तिवृद्धिमें अप्रभावकारी रहता है, बल्कि वस्तुतः जो लोग उसे भंग कर रहे हैं उनकी मदद करता है।

(३) युद्ध स्वतंत्रताको भले ही नष्ट कर दे, लेकिन अगर प्रजातंत्र बरकरार रहे तो कमसे कम उसका कुछ अंश फिरसे प्राप्त करनेकी कुछ संभावना तो रहती है, जब कि फासिस्टोंको अगर संसारका शासन करने दिया जाय तो उसकी बिलकुल कुछ गुंजाइश ही नहीं है। इसलिये अंतःकरणसे युद्धपर आपत्ति करनेवाले लोग लोकसत्तात्मक शक्तियोंको कमजोर करते हुये विरोधियोंकी मदद करके अपने ही उद्देश्यको नष्ट कर रहे हैं।

लाजिमी सैनिक भर्तीवाले किसीभी देशमें, यहाँतक कि खतरेकी संभावनावाले ग्रेट-ब्रिटेनमें भी, नौजवानोंके लिये इस प्रश्नका हल होना बहुत जरूरी है। लेकिन दक्षिण आफ्रीका, मिस्र या आस्ट्रेलिया जैसे देशोंमें, जिन्हें शायद चढ़ाईकी संभावनाका मुकाबला करना पड़े, और हिन्दुस्तानमें, जिसमें 'पूर्ण स्वाधीनता'के समय शायद जापान या मुस्लिम देशोंकी गुट्टकी चढ़ाईकी संभावना रहे, यह अभी अमलमें उतना महत्वपूर्ण नहीं है।

ऐसी संभावनाओं (बल्कि कहना चाहिये कि हकीकतों) के सामने क्या हरएक तीव्र-बुद्धि रखनेवालेको (फिर वह चाहे जवान हो या बूढ़ा) क्या इस बातका निश्चय न होना चाहिये कि उसके करनेके लिये कौन-सा तरीका सही और व्यवहारिक है? यह एक ऐसी समस्या है जिसका किसी-न-किसी रूपमें या (अगर रोज नहीं तो किसी न किसी दिन) हममें हरएकको खुद सामना करना पड़ेगा। क्या आपके वाचक इन सब बातोंको स्पष्ट करनेमें सहायक हो सकते हैं? जिन्हें इस बातका निश्चय न हो कि समय आनेपर उन्हें इसका क्या जवाब देना चाहिये, वे इसपर विचार करके इस बारेमें निश्चय कर सकते हैं। हाँ, जिन्हें अपने जवाबका निश्चय हो उन्हें मेहरबानी करके दूसरोंको भी वैसा ही निश्चित बनानेमें मदद करनी चाहिये।

शान्तिकी प्रतिज्ञा लेनेवालेके प्रतिरोधके पक्षमें जो दलीलें दी गयी हैं उनके बारेमें तो कुछ भी कहनेकी जरूरत नहीं है। हाँ, प्रतिरोधके विरुद्ध जो दलीलें दी गयी हैं उनकी सावधानीके साथ छान-बीन करनेकी जरूरत है। इनमेंसे अगर पहली दलील सही हो तो वह युद्ध विरोधी आन्दोलनकी ठेठ जड़पर ही कुठराघात करती है। इसका आधार इस कल्पना पर है कि फासिस्टों और नाजियोंका हृदय पलटना संभव है। उन्हीं जातियोंमें वे पैदा हुये हैं जिनमें कि तथाकथित प्रजातंत्रवादियों, या कहना चाहिये खुद युद्ध-विरोधियोंका जन्म हुआ है। अपने कुटुम्बियोंमें वे वैसे ही मृदुता, वैसे ही प्रेम, समझदारी व उदारतासे पेश आते हैं जैसे युद्धविरोधी इस दायरेके बाहर भी शायद पेश आते हों।

अन्तर सिर्फ परिमाणका है। फासिस्ट और नाजी तथाकथित प्रजातंत्रोंके दुर्गुणोंके कारण ही न पैदा हुये हों तो निश्चय ही वे उनके संशोधित संस्करण हैं। किर्बी पेजने पिछले युद्धसे हुये संहारपर लिखी हुई अपनी पुस्तिकामें बताया है कि दोनों ही पक्षवाले झूठ और अति-शयोक्तिके अपराधी थे। वरसाईकी सन्धि विजयी राष्ट्रों द्वारा जर्मनीसे बदला लेनेके लिये की गयी सन्धि थी। तथाकथित प्रजातंत्रोंने सबसे पहले दूसरोंकी जमीनोंको जबरदस्ती अपने कब्जेमें किया है और निर्दय दमनको अपनाया है। ऐसी हालतमें अपने पूर्वजोंने तथाकथित पिछड़ी हुई जातियोंका अपने भौतिक लाभके लिये शोषण करनेमें जिस अवैज्ञानिक हिंसाकी वृद्धि की थी, मेसर्स हिटलर ऐन्ड कम्पनीने उसे वैज्ञानिक रूप दे दिया तो उसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है? इसलिये अगर यह मान लिया जाय, जैसा कि माना जाता है, कि ये तथाकथित प्रजातंत्रवादी अहिंसाका एक हद तक पालन करनेसे पिघल जाते हैं तो फासिस्टों और नाजियोंके पाषाण हृदय पिघलानेके लिये कितनी अहिंसाकी जरूरत होगी, यह त्रैराशिकसे मालूम किया जा सकता है। इसलिये पहली दलील तो निकम्मी है, और इसमें कुछ तथ्य माना भी जाय तो भी उसे ध्यानसे बाहर निकाल देना होगा।

अन्य दो दलीलें व्यवहारिक हैं। शान्तिवादियोंको ऐसी कोई बात तो न करनी चाहिये जिससे उनकी सरकारोंके कमजोर पड़नेकी सम्भावना हो! लेकिन इस भयसे उन्हें यह दिखा देनेके एकमात्र कारगर अवसरको नहीं गंवा देना चाहिये कि सभी तरहकी युद्धोंकी व्यर्थतामें उनका अटूट विश्वास है। अगर उनकी सरकारें पागलपनके साथ युद्ध विरोधियोंको शहीद बनाने लगें, तो उन्हें अपनी करनीके फलस्वरूप होनेवाली अशान्तिके परिणामोंको सहना ही पड़ेगा। प्रजातंत्रोंको चाहिये कि वे व्यक्तिगत रूपसे अहिंसाका पालन करनेकी स्वतंत्रताका आदर करें। ऐसा करनेपर ही संसारके लिये आशा-किरणोंका उदय होगा।

हरिजन सेवक
१५ अप्रैल, १९३९

नया तरीका

बिहार प्रान्तान्तर्गत चम्पारन जिलेके वृन्दावन गांवमें होनेवाले गान्धी-सेवा-संघके पांचवें अधिवेशनमें गान्धीजीने जो प्रवचन दिया, उसका सारांश नीचे दिया जाता है।

राजकोटसे चलते वक्त जो वक्तव्य मैंने दिया था, उसीकी एक-दो बातोंकी मैं इस भाषणमें चर्चा करूँगा। किशोर लालने अहिंसाके मुख्य फलितार्थोंका विस्तारसे जो वर्णन किया है वह ठीक ही है, याने हमारी हिंसासे हमारे प्रति हमारे विरोधीका रुख सख्त होनेके बजाय नरम होना चाहिये, इससे उसका दिल पिघलना चाहिये और उसके अन्दर हमारे लिये सहानुभूतिकी भावना जागृत होनी चाहिये। हिंसाका काम जो कुछ उसके रास्तेमें आये उस सबको नष्ट करना है, तो अहिंसाका काम हिंसाके मुँहमें अपने आप चले जाना है। अहिंसाके वातावरणमें किसीको अपनी अहिंसाकी अग्नि-परीक्षाका अवसर नहीं मिलता। उसे तो तभी कसौटी पर कसा जा सकता है जब कि हिंसासे मुकाबला हो।

मैं यह सब जानता हूँ और इसे अमलमें लानेका सदा प्रयत्न करता रहा हूँ, लेकिन मैं यह नहीं कह सकता कि अपने विरोधियोंके दिल पिघलानेमें सदा सफल रहा हूँ। राजकोटने मेरे मनमें इस बातकी बड़ी तीव्रतासे अनुभूति करा दी है। मैं अपने मनमें सोच रहा था कि दरबार वीरावालाका हृदय परिवर्तन करनेमें हम अबतक क्यों असफल रहे हैं? इसका सीधा जवाब यह है कि अहिंसात्मक रूपमें हमने उनके साथ व्यवहार नहीं किया है। हमने उन्हें बुरा भला कहा है, और सत्याग्रही क्या करते हैं इसपर मैंने पूरा ध्यान नहीं दिया है। मैंने अपनी वाणीपर भले ही काबू रक्खा हो, लेकिन दूसरोंकी वाणी पर मैंने वैसा काबू नहीं रक्खा।

रेजिडेण्ट मि० गिब्सनसे बातचीत करते हुये जब मैंने यह कहा कि कमेटी बनानेका काम ठाकुर साहबपर ही छोड़ दिया जाय,जिसे कुछ मि० गिब्सनने साहसकी बात बतायी उस समय अँधेरेमें उजालेकी तरह यह बात मेरे ध्यानमें आयी। तभी मुझे यह बात सूझी जिसे मैंने नया तरीका कहा है। यह बात खतरेसे खाली नहीं है, यह इसीसे स्पष्ट है कि जो कुछ वहाँ हो रहा था उन सबको मुझे रोक देना पड़ा है। राजकोटकी लड़ाईमें अपने उपवासके समय मुझे सम्राटके प्रतिनिधिके हस्तक्षेपका सहारा लेना पड़ा, और उसके बाद उनके राजकोट-स्थित प्रतिनिधि रेजिडेण्टसे मैं मदद मांग रहा हूँ। जब मैंने वह 'साहसपूर्ण' बात कही तो मुझे आश्चर्य हुँ कि क्यों मैं सर्वोच्च सत्ताको भुलाकर एकमात्र राज्यपर ही सारा ध्यान लगानेकी नहीं सोच रहा था। लेकिन शायद ऐसे साहसकी हिम्मत नहीं थी। अभी भी मैं यह निश्चय नहीं कर सका हूँ कि राजकोटके मामलेमें मुझे सर्वोच्च सत्ताके पास नहीं जाना चाहिये, ग्वायर-एवार्डको लोगोंको फाड़ देनेकी सलाह देनी चाहिये, और नये सिरेसे राज्यके साथ ही सब मामला शुरू करना चाहिये। उस हालतमें मेरा सत्याग्रह सिर्फ राज्यके साथ होगा, और राजकोटके अधिकारियोंका हृदय-परिवर्तन करनेके लिये मुझे अपने प्राणोंकी भी बाजी लगा देनी होगी। तब उस समय अद्भुत प्रयोगशाला याने राजकोटपर ही मेरे सारे प्रयोग सीमित होंगे। मेरी निराशाकी तहमें मेरी अहिंसाका कोई प्रभाव हो तो, अहिंसाकी दृष्टिसे, ये प्रयोग निश्चय ही अधिक संपूर्ण होंगे।

अहिंसावादी

अब कांग्रेसकी सड़न या अस्वच्छताको लीजिये। भला कांग्रेसमें इतनी गन्दगी क्यों होनी चाहिये? और इन सब गन्दगीके होते हुये हम "कांग्रेसवादी" नामके पात्र कैसे हो सकते हैं? आपमेंसे कुछ लोग गान्धीवादी कहलाते हैं। गान्धीवादी नाम कोई रखनेके काबिल नहीं है। इसके बजाय तो अहिंसावादी क्यों न कहा जाय, क्योंकि गान्धी तो अच्छाई और बुराई, निर्बलता और बल, हिंसा और अहिंसाका सम्मिश्रण है, पर अहिंसामें कोई मिलावट नहीं है। अब बतलाइये कि अहिंसावादीकी हैसियतसे क्या आप यह कह सकते हैं कि आप शुद्ध अहिंसाका पालन कर सकते हैं? क्या आप यह कह सकते हैं कि अपने विरोधीके तीरोंको आप अपने मनमें उससे बदला लेनेकी संभावना रखे बगैर छाती खोलकर ओढ़ लेते है? क्या आप कह सकते हैं कि अपनी नुक्ताचीनीपर आप नाराज और क्षुब्ध नहीं होते? मुझे भय है कि बहुतसे लोग ऐसी कोई बात नहीं कह सकते।

आप इसपर उलटे यह कहेंगे कि खुद आपने ही इस हदतक अहिंसाका पालन करनेका दावा अभी नहीं किया है। ऐसा हो तो मैं मानता हूँ उस हदतक अहिंसा—पालन सदोष रहा है। अहिंसा तो अपने दोषोंको बढ़ाकर और अपने विरोधीके दोषोंको कम करके बताती है। अहिंसावादी अपनी आंखोंके तिनकेको पहाड़ समझता है और अपने विरोधीके पहाड़को तिनका समझता है। पर हमने तो इससे अन्यथा किया है।

देशी राज्योंका जहाँतक सवाल है हमने कहा यह है कि हम राजाओंको नष्ट नहीं करना

चाहते, हम तो उनके शासनमें सुधार करके उन्हें परिवर्तित भर करना चाहते हैं। पर हमारी वाणीने अक्सर हमारे दावोंको झूठा ही साबित किया है।

राजकोटके बारेमें यद्यपि मैंने यह वक्तव्य दिया है, लेकिन मैं यह आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं राजकोटको मँझधारमें नहीं छोड़ूँगा। अपने कार्यकर्ताओंका साथ छोड़कर उन्हें मार्ग-भ्रष्ट होनेका ही मौका न दूँगा। अगर मैं ऐसा करूँ तो जरूर यह सठिया जानेकी निशानी होगी, लेकिन मैं सठिया गया हूँ, ऐसा मुझे नहीं मालूम पड़ता। इसके विरुद्ध मैं तो इस बातकी प्रार्थना कर रहा हूँ कि वहाँके कार्यकर्ताओंकी शक्ति तिगुनी बढ़े। मैं तो पहले तरीकेमें एक तीव्र परिवर्तन भर करनेको कह रहा हूँ।

आप लोगोंमें भी गंदगी

यह कहनेके बाद अब मैं गान्धी-सेवा-संघपर आता हूँ। अबतक मैंने जो कुछ कहा है उसपर आपने ध्यान रक्खा हो तो आप यह शायद समझ गये होंगे कि हमें अपनेको थोड़ा बहुत नये सांचेमें ढालना पड़ेगा। हमें अपने तई अपनी तरह छान-बीन करके यह पता लगाना पड़ेगा कि कसोटीपर हम कहाँतक खरे उतरते हैं। अगर हम उसमें खरे न उतरते हों, तो हमारे लिये यह बेहतर होगा कि हम अपने सदस्योंकी संख्या घटा दें। सत्य और अहिंसामें हृदयसे श्रद्धा रखने-वाले २० भी सच्चे सदस्य हों तो वह २०० ऐसे सदस्योंसे अच्छे रहेंगे जो इस ओरसे उदासीन हों। क्योंकि वे तो एक दिन हमें सर्वनाशपर ले जायेंगे, जब कि २० के बदौलत शायद सच्चे सदस्योंकी ही संख्या २०० तक पहुँच जाये।

गन्दगी तो क्या संघमें भी नहीं आ गयी है? संघके सदस्योंने क्या धूर्तता, सन्देह और पारस्परिक अविश्वासको नहीं अपनाया है? सब सदस्योंको मैं नहीं पहचानता, मैं तो सिर्फ कुछके ही नाम जानता हूँ। इसलिये अपनी व्यक्तिगत जानकारीमें नहीं बल्कि अपने मर्यादित अनुभवके आधारपर ही मैं यह कह रहा हूँ। बदकिस्मतीसे जमनालालजी यहां नहीं हैं। जिनकी बहुत सी संस्थाओंसे उनका सम्बन्ध है, उनके अनुभवोंमें उन्होंने अक्सर मेरे साथ हिस्सा बढ़ाया है। उनके निर्विघ्न रूपसे चलनेमें कठिनाई क्यों होनी चाहिये? भला, हम पूर्ण विश्वासके साथ अपने कार्यकर्ताओंको देशके एक भागसे दूसरे भागका काम सम्हालनेके लिये क्यों नहीं भेज सकते?

ईश्वरमें जीवित श्रद्धा

यह सब मैं आपके दोष निकालनेके लिये नहीं कह रहा हूँ, बल्कि इसलिए कि अनुशासन और हमारे सिद्धान्तोंका कड़ाईसे पालन करनेकी जरूरतको आप अच्छी तरह महसूस कर लें। सत्याग्रहीकी ईश्वरमें जीवित श्रद्धा होनी चाहिये। यह इसलिये कि ईश्वरमें अपनी अटल श्रद्धाके सिवाय उसके पास कोई दूसरा बल नहीं होगा। बगैर उस श्रद्धाके सत्याग्रहका अस्त्र वह किस प्रकार हाथमें ले सकता है? आप लोगोंमेंसे, जो ईश्वरमें ऐसी जीवित श्रद्धा न रखते हों, उनसे तो मैं यही कहूँगा कि वे गान्धी-सेवा-संघको छोड़ दें और सत्याग्रहका नाम भूल जायें।

अहिंसाका प्रतीक

आप लोगोंमेंसे ऐसे कितने हैं कि जिनकी चर्खेमें जीवित श्रद्धा है ? क्या आप उसे हृदयसे अहिंसाका प्रतीक मानते हैं ? अगर हमारी ऐसी श्रद्धा है तो हमारी कताईमें स्वतः एक शक्ति होगी। कताई तो बल्कि सविनय अवज्ञासे भी अधिक शक्तिशाली है; सविनय अवज्ञासे क्रोध और द्वेषभावनाको उत्तेजन मिल सकता है, पर कताईसे ऐसा कोई दुर्भाव उत्तेजित नहीं होता। २० साल पहले मैंने अपने चर्खेमें अपनी श्रद्धाका एलान किया था। आज मैंने २० वर्षके अनुभवके बलपर फिर उसी अडिग श्रद्धाका एलान करता हूँ। अगर आपको लगता है कि आपके हृदयमें चर्खेके प्रति ऐसी श्रद्धा नहीं है, तो मैं आपसे कहूँगा कि आप सत्याग्रहको भूल जायँ।

श्री प्रजापति मिश्रने बताया था कि यहाँसे पाँच मीलके चक्करमें जितने गाँव आते हैं उनमें उन्होंने चर्खेको दाखिल करा दिया है। इसमें गर्व करनेकी ऐसी क्या बात है ? लक्ष्मी बाबूने एक सुन्दर प्रदर्शिनीका आयोजन किया है, पर उसमें कोई ऐसी चीज नहीं है जो मुझे हर्षोन्मुक्त कर सके। बिहारमें तो, जिसे कि इतने तमाम सुन्दर कार्यकर्त्ताओंको पैदा करनेका गर्व है, ऐसा एक भी घर नहीं होना चाहिए, जिसमें चर्खा न हो। बिहारकी तो हम सूरत बदल सकते हैं, अगर हमें यह मालूम हो जाय कि चर्खेमें कितनी शक्ति और कितनी सामर्थ्य है। मैं अपनी उन हजारों भूखों मरनेवाली बहिनोंकी बातें नहीं कर रहा हूँ, जिन्हें अपने पेटके लिए कमाना जरूरी है, बल्कि मैं उन लोगोंके बारेमें बातें कर रहा हूँ जो सत्य और अहिंसामें श्रद्धा रखनेका दावा करते हैं। जिस क्षण वे यह जान जायँगे कि चर्खा अहिंसाका प्रतीक है, उनके सामने एक नया प्रकाश आ जायगा, समयके अपव्ययको वे एक गुनाह समझने लगेंगे, वे किसीके दिलको दुखानेवाली भाषाका प्रयोग नहीं करेंगे और न उनके मनमें कभी निरर्थक विचार उठेंगे।

चर्खा स्वतः एक निर्जीव वस्तु है, पर जब हम उसमें अमुक गुणोंका आरोप कर देते हैं, तब वह एक सजीव वस्तु बन जाता है। रामनाम तक देखा जाय तो स्वतः निर्जीव है, किन्तु वह भगवानका एक जीवित प्रतीक बन गया है। क्योंकि लाखों-करोड़ों मनुष्योंने उसमें अपना भक्ति-भावको प्रतिष्ठित किया है। चर्खा एक पापी मनुष्य भी चला सकता है और राष्ट्रकी सम्पत्तिको बढ़ा सकता है। मैं ऐसे लोगोंको जानता हूँ जिन्होंने मुझे बताया कि चर्खेकी मधुर संगीतने उनकी विषय-वासना और दूसरे विकारोंका शमन कर दिया है।

हिंदुस्तानमें मैंने जो सत्याग्रहकी कल्पना कर रखी है उसके लिये चर्खा इसी कारण इतना आवश्यक हो गया है। जब मैंने १९०८में 'हिंद स्वराज' लिखा तब चर्खा देखा भी नहीं था ; मैंने तो दरअसल करघेको चर्खा समझा था। लेकिन उस समय भी चर्खा मेरे लिये अहिंसाका एक प्रतीक था। इसलिए मैं एक बार फिर कहूँगा कि अगर लोगोंकी चर्खेमें इस तरहकी जीवित श्रद्धा नहीं है, तो वे सत्याग्रहमें न कूदें। वे अपने बलपर भले ही सत्याग्रह करें, पर वे मेरा कोई उपयोग नहीं कर सकेंगे।

कांग्रेसमें गंदगी

कांग्रेसकी गन्दगीके प्रश्नके सम्बन्धमें मैं यह कहूँगा कि उसे निर्मूल करनेका सर्वोत्तम उपाय यह है कि हम खुद अपनी शुद्धि करें। संगठनात्मक अंगसे संबंध रखनेवाली समस्याको तो कांग्रेस हल कर लेगी। सत्य और अहिंसा आपलोगोंकी अपेक्षा उसके लिए कुछ कमकी महत्वकी चीज नहीं हैं। फिर कांग्रेस उसे बदल सकती है, पर आप लोग ऐसा नहीं कर सकते।

प्रचार कमसे कम

अब मैं दो शब्द उसके विषयमें कहूँगा, जो गान्धीवाद कहा जाता है, और उसके प्रचारके बारेमें भी। सत्य और अहिंसाका प्रचार जितना इन सिद्धान्तोंके अनुसार वस्तुतः आचरण करनेसे होता है, उतना पुस्तकोंमें नहीं होता। सत्य-आचरणका जीवन पुस्तकोंसे कहीं ज्यादा महत्व रखता है। मैं यह नहीं कहता कि हम पुस्तकें या पत्र प्रकाशित न करें। मैं तो केवल यही कहता हूँ कि वे आवश्यक नहीं हैं। अगर हम अहिंसा और सत्यके सच्चे भक्त हैं, तो ईश्वर हमें कठिन-से-कठिन समस्याओंको हल करनेकी आवश्यक शक्ति दे देगा। विरोधीके दृष्टिकोणको समझनेकी नीयतका इस भक्तिमें समावेश हो जाता है। उसकी मनोवृत्तिमें उतरनेका और उसका दृष्टिकोण समझनेका सच्चा प्रयत्न हमें करना ही चाहिए। हिंसाके मुँहमें अहिंसाका सीधे चले जानेका यही अर्थ है। अगर हमारे मनकी इस प्रकारकी वृत्ति हो तो हम अहिंसाके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेकी आशा कर सकते हैं। बगैर इसके किताबों और अखबारोंका प्रचार-कार्य कोई अर्थ नहीं रखता। आपको शायद यह मालूम नहीं है कि मैं 'यंग इंडिया'को किस उपेक्षाके साथ चलाया करता था। 'यंग इंडिया-का' प्रकाशन जब बन्द कर देना पड़ा, तब मैंने इसके लिए एक आँसू भी नहीं बहाया था। मगर सत्याग्रह, जिसकी कि मदद करना, इसका उद्देश्य था, बच गया। कारण कि सत्याग्रह किसी बाहरी मददपर निर्भर नहीं करता, वह तो अपनी सारी शक्ति अन्दरसे प्राप्त करता है।

हरिजन सेवक
१३ मई, १९३९

❀

सत्य के पास अपनी रक्षाके लिए अमोघ शक्ति है। सत्य ही जीवन है और ज्योंही यह किसी मानव-व्यक्तिमें अपना घर कर लेता है त्योंही यह अपने को फैला लेता है।"

—गांधीजी

अहिंसाका मार्ग

२४ एप्रिलको जब यहाँसे मैं कलकत्तेके लिए रवाना हुआ, तब मैंने यह कहा था कि राजकोट मेरे लिए एक प्रयोगशाला साबित हुआ है। इसका सबसे ताजा प्रमाण मेरी इस घोषणामें है, जो मैं कर रहा हूँ। सहयोगियोंके साथ बहुत वाद-विवादके बाद मैं आज शामको ६ बजे इस निर्णयपर पहुँचा हूँ कि भारतके चीफ जस्टिस द्वारा दिये हुये निर्णयका मैं परित्याग कर दूं।

मैं अपनी गलती स्वीकार करता हूँ। उपवासके अन्तमें मैंने यह कहा था कि मेरा यह उपवास जितना सफल हुआ है उतना इससे पहलेका और कोई उपवास सफल नहीं हुआ। मगर अब मैं देखता हूँ कि वह हिंसासे रंजित था। उपवास करके मैंने सार्वभौम सत्ताकी दस्तंदाजी चाही, ताकि वह ठाकुर साहबको अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए प्रेरित करे। यह 'अहिंसा'का हृदय-परिवर्तनका मार्ग नहीं है, यह तो हिंसा तथा 'दबाव' डालनेका मार्ग है। अगर मेरा उपवास ठाकुर साहबके ही प्रति होता और मैं उनके तथा उनके सलाहकार श्री वीरावालाके हृदयको पिघला सकता और ऐसा करते हुए मर जानेमें भी संतोष मानता तो मेरा उपवास शुद्ध होता। मेरे रास्तेमें अगर अगणित कठिनाइयाँ न आतीं, तो मेरी आँखें न खुलतीं। दरबार श्री वीरावाला ग्वायर-निर्णयको दिलसे नहीं पसन्द करते थे। इसलिए उन्होंने देरी लगानेमें हर एक मौकेका लाभ उठाया। निर्णय तो मेरा मार्ग प्रशस्त करनेके बदले मुसलमानों और भायातोंको मेरे विरुद्ध नाराज करनेमें बहुत बड़ा कारण बन गया। निर्णयके पहले हम लोग दोस्तोंकी तरह मिले थे। अब मुझपर स्वेच्छासे और बगैर किसी विचारके वचन-भंग करनेका आरोप किया जाता है। यह मामला चीफ जस्टिसके पास जानेवाला था कि वे इस बातका निर्णय कर दें कि मैं आरोपित वचन-भंगका दोषी हूँ या नहीं।

मुसलिम काउन्सिल और गिलासिया असोसिएशनके वक्तव्य मेरे सामने हैं। अब चूंकि मैंने ग्वायर-निर्णयसे मिलने वाले लाभको छोड़ देनेका निश्चय किया है, अतः उन दोनों मामलोंका जवाब देना मेरे लिए जरूरी नहीं रह गया है। जहाँ तक मेरा ताल्लुक है, मुसलमान और भायात कोई भी चीज ठाकुर साहबसे, जो वे कृपापूर्वक दें, प्राप्त कर सकते हैं। केस तैयार करनेके लिए मैंने उनको जो तकलीफ दी, इसके लिए मैं उनसे क्षमा चाहता हूँ। अपनी कमजोरीकी हालतमें आवश्यक जोर डलवानेके लिए मैं वायसरायसे क्षमा माँगता हूँ। चीफ जस्टिसको मैंने कष्ट पहुँचाया, इसलिए उनसे भी क्षमा-याचना करता हूँ, क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता होता, तो उन्हें वह कष्ट न उठाना पड़ता, जो उन्होंने उठाया और सर्वोपरि, मैं ठाकुर साहब और श्री वीरावालासे भी क्षमा चाहता हूँ।

जहाँतक दरबार श्री वीरावालका संबंध है, मुझे यह कबूल करना चाहिए कि अपने दूसरे सहयोगियोंकी भाँति मैं भी उनके संबंधमें बुरे विचार रखता था। मैं यहाँ इस बातपर

विचार नहीं करना चाहता कि उनपर लगाये गये आरोप सही थे या गलत। उनपर बहस करनेकी यह जगह नहीं है। यह कहना ही काफी होगा कि वह अहिंसाका मार्ग नहीं था, और न उनपर अबतक उसका प्रयोग ही किया गया है। और मुझे अपने विरुद्ध यह भी बात कहने दी जाय कि मैं दोहरी चाल खेलनेका गुनहगार था—यानी एक ओर तो ग्वायर-निर्णयकी तलवार उनके सरपर लटकाये रहता था और दूसरी ओर उनसे प्रार्थना करता और आशा रखता था कि वे स्वेच्छासे ठाकुर साहबको उदार शासन-सुधारकी सलाह देंगे।

मैं यह मानता हूँ कि यह तरीका अहिंसासे बिलकुल मेल नहीं रखता। जब मैंने १९ एप्रिलको यकायक मि० गिब्सनके सामने तजबीज रखी, जो कि खिलाड़ी जैसी तजबीज कही जाती है, तब मुझे अपनी कमजोरीका पता लगा। मगर तब मुझमें यह कहनेका साहस नहीं था, कि मैं 'निर्णय'से कोई मतलब नहीं रखना चाहता। इसके बजाय, मैंने तो यह कहा—'ठाकुर साहब अपनी कमेटी नियुक्त करें, तब परिषद्के आदमी निर्णयकी शर्तोंके अनुसार उस रिपोर्टकी जाँच करेंगे, और अगर वह दोषपूर्ण हुई तो वह फैसलेके लिए भारतके चीफ जस्टिसके पास भेजी जायगी।'

दरबार श्रीवीरावालको इसमें एक नुक्स दिखायी दिया, और ठीक ही उन्होंने यह कहकर मेरी तजबीजको खारिज कर दिया, कि 'अब भी आप निर्णयकी तलवार मेरे सरपर लटकाये हुए हैं, और ठाकुर साहबकी कमेटीके ऊपर कोर्ट आफ अपील चाहते हैं। अगर ऐसी बात है, तो आपका जितना उचित है उतना ले लीजिये इससे अधिक आपको नहीं मिल सकता।'

उनके एतराजमें जोर था, यह मैंने अनुभव किया। मैंने उनसे यह भी कहा कि मैं निर्णयको ताकपर रख देनेकी हिम्मत अपनेमें नहीं देखता, मगर मैं फिर भी उनसे पैरवी करूँगा कि प्रजाके साथ समझौता करा लें और यह समझ लें कि ग्वायर-निर्णय अस्तित्वमें नहीं है और मैं तथा सरदार बीचसे हट गये हैं। उन्होंने वचन दिया कि वे प्रयत्न करेंगे। उन्होंने अपने तरीकेसे इसके लिए कोशिश भी की मगर उदार-हृदयसे नहीं। मैं उन्हें इसके लिए दोष नहीं देता। मैं उनसे उदारताकी कैसे आशा रख सकता था, जब कि वे जानते थे कि बुजदिलीसे ग्वायर-निर्णयसे चिपटा हुआ हूँ? आखिरकार मैंने अपना खोया हुआ साहस फिर पा लिया। भूल स्वीकार करने और पश्चातापसे 'अहिंसा'की सार्वभौम-शक्तिमें मेरी श्रद्धा और भी ज्वलन्त हो गयी है।

मुझे अपने सहयोगियोंके साथ अन्याय नहीं करना चाहिये। उनमेंसे बहुत गलतफहमियोंसे भरे हुये हैं। मेरी अहिंसाकी व्याख्या उनके लिए नयी नहीं है। मेरे पश्चातापके लिए वे कोई जगह नहीं देखते। उनका ख्याल है कि एक राजनीतिक नेता होनेके कारण ७५०००, नहीं, नहीं, समस्त काठियावाड़की प्रजाके भाग्यके साथ इस तरह खिलवाड़ करनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है। मैंने उनसे कहा कि उनका यह भय अनुचित है, और शुद्धिके प्रत्येक कार्यसे, साहसकी प्रत्येक उपलब्धिसे सत्याग्रह-आंदोलनसे प्रभावित प्रजा-पक्षकी शक्ति बढ़ती है। मैंने उनसे यह भी कहा है कि अगर वे मुझे अपना सेनापति और सत्याग्रहका विशेषज्ञ समझते हैं, तो उन्हें उसके साथ रहना और चलना चाहिये, जो उन्हें मेरी सनक ही क्यों न मालूम होती हो।

निर्णयके दबावसे मुझे ठाकुर साहब और उनके सलाहकारसे अब यह अपील करते हुए तनिक भी संकोच नहीं होता कि राजकोटकी प्रजाकी आशाओंको पूरी करके वे उसे शान्त करें और उसकी तमाम आशंकाओंको दूर कर दें।

हरिजन सेवक
२० मई, १९३९

यहूदियोंका प्रश्न

'ज्यूइश फ्रांटियर'के मैनेजिंग एडिटरने कृपाकर मुझे मार्चके अंककी एक प्रति भेजकर यह प्रार्थना की है कि मैंने जर्मनी और फिलस्तीनके यहूदियोंपर जो लेख लिखा था, उसके उक्त पत्रमें प्रकाशित जवाबका मुझे भुगतान करना चाहिये। जवाब बड़ी योग्यताके साथ लिखा गया है। 'हरिजन'में अगर जगह होती तो मैं सारा ही यहाँ उद्धृत कर देता।

मैं यह कहूँगा कि मैंने वह लेख आलोचकके रूपमें नहीं लिखा था। मैंने तो उसे यहूदी मित्रों तथा पत्र-लेखकोंकी जरूरी प्रार्थनापर लिखा था। मैंने जब लिखनेका निश्चय कर लिया, तो फिर मैं उसे किसी दूसरे तरीकेसे नहीं लिख सकता था।

पर जब मैंने यह लेख लिखा तब यह आशा नहीं की थी कि यहूदी तुरंत मेरे मतके हो जायँगे। अगर एक भी यहूदी पूरी तरह कायल हो गया हो और उसका मत बदल गया हो, तो मुझे संतोष मान लेना चाहिये।

न मैंने यह लेख केवल आजके लिए लिखा था। मैं इस बातको विश्वासके साथ कहता हूँ—फिर भले ही यह मेरी आत्म-प्रशंसा समझी जाय—मेरी मृत्युके बाद मेरे कुछ लेख जीवित रह जायँगे, और जिन उद्देश्योंसे वे लिखे गये हैं, उनकी उनसे सेवा ही होगी। मुझे इसमें कोई निराशा नहीं दीखती कि मेरे लेखने, मेरी जानकारीमें, एक भी यहूदीका मत परिवर्तन नहीं किया।

अपने लेखके जवाबको एकसे अधिक बार पढ़नेके बाद, मैं यह जरूर कहूँगा कि मैंने अपने लेखमें जो राय जाहिर की थी, उसे बदलनेकी मैं कोई वजह नहीं देखता। बहुत मुमकिन है, जैसा कि लेखकने कहा है—

"अगर जर्मनीमें कोई यहूदी गान्धी पैदा हो जाय, तो वह लगभग पांच ही मिनट काम कर सकेगा, और फौरन उसका सिर उड़ा दिया जायगा।"

मगर इससे मेरा मामला खारिज नहीं हो जाता और न इससे मेरी अहिंसाकी शक्तिमें जो श्रद्धा है उसे कोई धक्का लगता है। जिन अधिनायकोंका अहिंसामें कोई विश्वास नहीं है उनकी भूख शान्त करनेके लिए हजारों नहीं तो सैकड़ोंके बलिदानकी आवश्यकता तो होगी ही, यह मैं कल्पना कर सकता हूँ। बड़ी से बड़ी हिंसाके सामने भी अहिंसा अपनी अमोघ-शक्ति दिखाती है। यह अहिंसाकी व्याख्याका सच्चा सूत्र है। ऐसे ही प्रसंगोंपर उसके गुणकी असल कसौटी होती है। कष्ट उठानेवालोंको अपने जीवन-कालमें परिणाम देखनेकी जरूरत नहीं। उन्हें तो यही श्रद्धा रखनी चाहिये कि यदि उनकी मृत्युके बाद उनका सिद्धान्त जीवित रह गया तो परिणामका आना निश्चित ही है। हिंसाका तरीका अहिंसाके तरीकेसे कोई बहुत बड़ी 'गारंटी' नहीं दिलाता। वह तो इतनी कम गारंटी दिलाता है कि जिसकी कोई हद नहीं। कारण यह है कि अहिंसाके पुजारीकी श्रद्धाका उसमें अभाव होता है।

लेखककी बहस इस बात पर है कि—

"मैंने यहूदियोंकी समस्यापर बगैर उस एकाग्रता और सत्यकी तीव्र शोधके लिख मारा, जिनसे कि अन्य समस्याओंसे पेश आते समय, मैं साधारणतया काम लेता हूँ।"

इसपर तो मैं इतना ही कह सकता हूँ कि जहाँ तक मुझे मालूम है, जब मैंने वह लेख लिखा तब न तो मुझमें एकाग्रताका अभाव था और न सत्यकी तीव्र शोधका ही। लेखकका दूसरा आरोप कहीं अधिक गंभीर है। उनका ख्याल है कि मेरे हिन्दू-मुसलिम ऐक्यकी हिमायतने मुझे अरबोंके दावेके प्रति पक्षपाती बना दिया, खासकर जब कि उस पहलूका स्वभावतः हिन्दुस्तानमें जोर दिया गया है। मैंने अक्सर यह कहा है कि मुसलमानोंकी मित्रता हासिल करनेकी तो बात ही क्या है, हिन्दुस्तानकी मुक्तिकी खातिर भी मैं सत्यको नहीं बेचूंगा। लेखकका ख्याल है कि जिस तरह मैंने खिलाफतके प्रश्नके संबंधमें गलती की थी उसी तरह यहूदियोंके प्रश्नके संबंधमें भी गलती कर रहा हूँ। इतना अधिक समय गुजर जानेपर भी मैंने जो खिलाफतका मामला हाथमें लिया था उसपर मुझे जरा भी अफसोस नहीं है। मैं यह जानता हूँ कि मेरा यह आग्रह साबित नहीं करता कि मेरा रुख कहाँ तक सही था। जरूरत केवल इतना भर जान लेने की है कि अपने १९१९-२०के कार्यके बारेमें मैं आज क्या विचार रखता हूँ।

मैं इस बातको जानता हूँ और मुझे इस बातका दुःख है कि मेरे उस लिखनेसे न तो 'ज्यूइश फ्रांटियर'के संपादककोही संतोष होगा, और न मेरे अनेक यहूदी मित्रोंको ही। फिर भी मैं यह दिलसे चाहता हूँ कि किसी-न-किसी तरह जर्मनीके यहूदियोंका उत्पीड़न खत्म हो जाय, और फिलस्तीनका सवाल इस तरह तय हो जाय कि जिससे सभी संबंधित पक्षोंको संतोष हो सके।

हरिजन सेवक
२७ मई, १९३९

जड़ मूलका मतभेद

प्रश्न—"सारी जड़ तो आप और सुभाष बाबूके बीच मूलभूत मतभेदोंकी है ? क्या आप संक्षेपमें बतला सकते हैं कि वे मतभेद क्या हैं ?"

उत्तर—हमारे पत्र-व्यवहारसे *यह बात जाहिर है, लेकिन मैं उसे प्रकाशित करनेके लिए स्वतंत्र नहीं हूँ।*" (इसके बाद तो सुभाष बाबू उसे प्रकाशित कर चुके हैं।) लेकिन मैं समझता हूँ कि हमारे मतभेद जग-जाहिर हैं। ब्रिटिश सरकारको चुनौती देनेकी जो बात उन्होंने कही है उसीको ले लीजिये। वह समझते हैं कि ब्रिटिश सरकारको चुनौती देनेके लायक स्थिति है, पर मुझे लगता है कि आज अहिंसात्मक लड़ाई छेड़ना और चलाना अशक्य है। जो लोग हिंसामें विश्वास करते हैं उनपर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है। राणपुर, रामदुर्ग और कानपुर इस बातके संकेत हैं। युक्तप्रान्तके कानपुर तथा अन्य नगरोंकी स्थितिपर पन्तजीका अहिंसात्मक नियंत्रण बहुत कम है और जिन कठिनाइयोंका हमें सामना करना पड़ रहा है, शिया-सुन्नीका झगड़ा उसका एक नया नमूना है। न केवल गैर-कांग्रेसियोंपर ही हमारा काबू नहीं है बल्कि खुद कांग्रेसियोंपर भी हमारा बहुत कम काबू है। एक समय था जब देशके अधिकांश लोग हमारी बात सुना करते थे, आज तो अनेक कांग्रेसवादी भी हमारे हाथोंमें नहीं हैं। नमक-सत्याग्रहके दांडी-मार्चका संगठन करनेकी आज मेरी हिम्मत नहीं है। आज तो सारा वातावरण उलटा हमारे अनुपयुक्त है। लेकिन सुभाष बाबूका विचार इससे उलटा है।

अब कांग्रेसियोंमें फैली हुई गन्दगीको लीजिये। कांग्रेसमें जो गन्दगी फैल रही है उसे दूर करनेके लिए मैं सारे कांग्रेस-तंत्रको ही शाइस्तगीके साथ दफना देनेके लिए तैयार हूँ। कार्य-समितिके सब सदस्योंको मैं अपने इस विचारपर सहमत कर सकता हूँ, यह मैं नहीं जानता। लेकिन यह मैं जानता हूँ कि शायद सुभाष बाबूको मैं अपने साथ सहमत नहीं कर सकता।

संक्षेपमें, मेरा यह विश्वास है कि हिंसा और गन्दगीका आज बोलबाला है। लेकिन वह इस बारेमें मुझसे सहमत नहीं हैं। इसलिए उनकी योजनाएं और कार्यक्रम मेरी योजनाओं और कार्यक्रमोंसे भिन्न ही होने चाहियें।

प्रश्न—समाजवादियों और पं० जवाहरलाल नेहरूके साथ भी क्या आपका ऐसा ही मतभेद है ?"

उत्तर—दूसरी बातोंको मिलाकर गोलमाल न कीजिये। चुनौतीकी कल्पना मूलसे ही सुभाष बाबूकी है और कितने लोग इसे स्वीकार करते हैं यह मैं नहीं जानता। इसके अलावा जवाहरलाल और दूसरे समाजवादी मित्रोंमें भी मतभेद है। समाजवादियोंसे मेरा जो मतभेद है उसे सब जानते हैं। मेरा विश्वास है कि मनुष्यका स्वभाव सुधर सकता है और उसके लिए हमें प्रयत्न करना चाहिये। वे लोग इसमें विश्वास नहीं करते। लेकिन मुझे आपको बता

देना चाहिये कि हम लोग एक दूसरेके अधिकाधिक निकट आ रहे हैं । या तो वे मेरी ओर खिंच रहे हैं या मैं उनकी ओर खिंच रहा हूं । जवाहरलालका जहां तक सवाल है, हम जानते हैं कि हममेंसे किसीका भी एक दूसरेके बिना काम नहीं चल सकता, क्योंकि हमलोगोंमें ऐसी आत्मीयता है जिसे कोई बौद्धिक मतभेद नष्ट नहीं कर सकते ।

लेकिन मैं आपसे कुछ और भी कहूंगा । अगर आप सब अपने धर्मके प्रति सच्चे हैं तो जो सवाल आपने किये वे किये ही नहीं जाने चाहिये थे । हम तो सर्वधर्म-समानत्व यानी सब धर्म-विचारोंके प्रति समान श्रद्धामें विश्वास करते हैं । इसलिए जिन्हें दक्षिणपन्थी और वामपन्थी कहा जाता है, उनकी मान्यताओंमें भी हमें समान श्रद्धा रखनी चाहिये । लेकिन जैसे इस्लाम और ईसाई धर्मके प्रति समान श्रद्धाका अर्थ यह नहीं है कि मैं उन दोनोंमेंसे किसी धर्मको अंगीकार कर लूं । इसी प्रकार समान श्रद्धाका यह मतलब नहीं होना चाहिये कि आप दूसरोंके विचारोंको अपना लें । मेरी समान श्रद्धा तो मुझे इसी बातके लिए बाध्य करती है कि उनके दृष्टिकोणको मैं समझ लूं जिससे कि जिस दृष्टिकोणसे वे अपने धर्मको देखते हैं उसकी मैं कद्र कर सकूं । इसका अर्थ यह हुआ कि जिन बातोंमें भिन्नता हो उनपर हम ध्यान न दें । उन्हीं बातोंपर जोर दें जिनमें मतैक्य हो ।

और एकताको सब संभव बातोंका पता लगानेमें भला कोई कठिनाई क्यों होनी चाहिये ? किसी बातका पता लगानेका राजमार्ग है विश्वास और सरल स्वभाव । बाइबिलमें दो सुनहरे नियम हैं । बाइबिलकी बात जो मैं कह रहा हूँ उसका यह मतलब नहीं कि हमारे शास्त्रोंमें ऐसे उपदेश नहीं हैं, लेकिन इस समय मुझे उन्हींकी याद आ रही है । यानी "विरोधीके साथ तू फौरन समझौता कर ले" और "अपने रोषपर आजके सूरजको अस्त न होने दे" । जबतक आप इसके अनुसार आचरण न करें आप संघके उपयुक्त सदस्य नहीं हैं, क्योंकि इन दोनों ही नियमोंका उद्गम अहिंसाका यह सिद्धान्त ही है । सीधे हिंसाके मुंहमें चले जानेका दूसरा कोई अर्थ ही नहीं है ।

जब मुझे यह बताया गया कि आपमेंसे कुछ लोगोंके दिलमें सरदारके बारेमें संदेह है तब मुझे यह लगा कि आपसे यह कहूं । आपको उनके पास सीधे जाना चाहिये और उनसे कैफियत माँगनी चाहिये । अगर आपको उनके जवाबसे संतोष न हो, आपके विचारमें उनकी सफाई अहिंसाकी कसौटीपर खरी न उतरे, तो आप सरदारसे कहें कि वे गाँधी-सेवा-संघसे अलग हो जायें ।

मैं आशा करता हूँ कि ये मतभेद अस्थायी हैं । पर वे काममें बराबर रुकावटें डाल रहे हों, और दूर होना असंभव हो गया हो, तब तो जितनी ही जल्दी हम संघको खतम कर दें उतना ही अच्छा । क्योंकि संघकी कल्पनामें सत्य और अहिंसाकी शक्तियोंको संगठित करनेकी संभावना है । पर हमें हमेशा ही अपने मतभेदोंपर बहस करते रहना है, तो हमें यह मानना चाहिये कि कम से कम हम लोगोंमें इन महान व्यक्तियोंके संगठित करनेकी क्षमता नहीं है ।

लेकिन आपने जो यह आवश्यक प्रश्न पूछा है—

रचनात्मक कार्य और अहिंसाके बीच क्या संबंध है? इन दोनोंका क्यों इतना घनिष्ठ संबंध है?

इस प्रश्नपर मुझे यह चीज ले जाती है। मेरा ख्याल है कि यह काफी स्पष्ट हो गया है कि बगैर अहिंसाके हिन्दू-मुसलिम ऐक्य, मादक-द्रव्य-निषेध और अस्पृश्यता-निवारण असम्भव है। रहा सिर्फ चर्खा। अहिंसाका प्रतीक चर्खा कैसे बन गया है? यह तो मैं पहले ही कह चुका हूं कि असल चीज तो वह भावना है, जिससे कि इसे आप देखते हैं, जिन गुणोंकी आप उसमें स्थापना करते हैं। चर्खेमें कोई ऐसी आनुषंगिक वस्तु नहीं है। गायत्री मंत्रको ही लीजिए। जो प्रभाव उसका मुझपर पड़ता है वही प्रभाव अहिंदुओंपर नहीं पड़ सकता। कलमाका मुसलमानोंपर जो असर पड़ता है वह मुझपर नहीं पड़ सकता। यही बात चर्खेके बारेमें है। चर्खेमें स्वतः ऐसा कोई गुण नहीं है जो अहिंसाकी शिक्षा दे सके और स्वराज हासिल करा सके। पर आप उसकी उन प्रतिष्ठित भावनाओंके साथ साधना करेंगे और वह तद्रूप हो जायगा। उसका प्रत्यक्ष मूल्य दरिद्रनारायणकी सेवा है, पर उसका यह अर्थ करना कि उसे अहिंसाका प्रतीक या स्वराजके लिए एक आवश्यक शर्त होनी चाहिए, जरूरी नहीं। मगर हमने १९२०से चर्खेका संबंध अहिंसा और स्वतंत्रताके साथ जोड़ दिया है।

फिर आत्मशुद्धिका भी कार्यक्रम है, जिसके साथ भी चर्खेका घनिष्ठ संबंध है। घरके कते सूतका मोटा-झोटा खद्दर जीवनकी सादगी और पवित्रताको जाहिर करता है।

'बगैर चर्खेके, बगैर हिंदू-मुसलिम-एकताके और बगैर अस्पृश्यता-निवारणके सविनय अवज्ञाका आन्दोलन कोई चल ही नहीं सकता। सविनय अवज्ञाके मूलमें तो यह कल्पना निहित है कि हम अपने बनाये नियमोंका स्वेच्छासे पालन करें। बगैर इसके किया हुआ सविनय-भंग तो निर्विय मजाक होगा। यह चीज है, जो मुझे राजकोटकी प्रयोगशालामें अनुभव हुई और इसपर मेरा दूना विश्वास हो गया। अगर एक भी मनुष्य तमाम शर्तोंको पूरा कर ले, तो वह भी स्वराज्य प्राप्त कर सकता है। मैं ऐसे आदर्श सत्याग्रहकी स्थितिसे अब भी दूर हूँ। राउलेट ऐक्टके विरोधमें जब सत्याग्रह शुरू किया गया, तब हमारे पास केवल मुट्ठीभर ही आदमी थे, लेकिन उन मुट्ठीभरसे हमने खासा बड़ा तंत्र बना लिया। चूंकि मैं अपूर्ण सत्याग्रही हूँ, इसलिए तो आपका सहयोग माँग रहा हूँ। ऐसा करते हुए मैं खूब आगे बढ़ता हूँ, क्योंकि मेरी अन्तर्शोध कभी बन्द नहीं होती। कोई इतना जराजीर्ण नहीं हो गया है कि इसमें वह आगे न बढ़ सके, मैं तो निश्चय ही नहीं हुआ हूँ। सत्याग्रहका जन्म ट्रांसवालमें हुआ था। कुछ ही हजार लोगोंने वहां उसका प्रयोग किया था। यहां लाखोंने प्रयोग किया। ६ एप्रिल १९१९को मद्राससे किये गये आह्वानका जो करोड़ों लोगोंने जवाब दिया और एक साथ उठ खड़े हुए उसकी कल्पना भी किसीने की थी? किन्तु आखिरी जीतके लिए रचनात्मक कार्यक्रम लाजिमी है। सचमुच, आज तो यह मेरी धारणा है कि अगर हम चर्खेका कार्यक्रम अहिंसाका प्रतीक स्वरूप समझकर पूरा न करेंगे—फिर उसमें चाहे जितना समय लगे—तो हम राष्ट्रके प्रति बेवफा साबित होंगे।

हरिजन सेवक

३ जून, १९३९

उलझन क्यों ?

मुझे दुःख है कि देशी राज्योंके संबंधमें मैंने जो वक्तव्य हालमें दिये हैं उन्होंने ऐसे लोगोंको भी परेशानीमें डाल दिया है जिन्हें कि मेरे लेखों और कार्योंको समझनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। किन्तु राजकोटके मेरे वक्तव्योंने, राजकोटके मेरे कार्योंने और त्रावणकोर संबंधी मेरे वक्तव्यने, इन सबने मिलकर मूल उलझनको और पेचीदा बना दिया है। प्यारेलाल और पीछेसे महादेव मेरे लेख तथा कार्योंको उनके सच्चे अर्थमें समझानेका वीरतापूर्वक प्रयत्न कर रहे हैं। मैं यह जानता हूँ कि वे अपने प्रयत्नसे गलतफहमीको कुछ हदतक दूर कर सके हैं। पर मैं देखता हूँ कि मुझे खुद भी कुछ समझानेकी जरूरत है। इसलिए अपने हालके लेखों तथा कार्योका जो अर्थ मैं समझता हूँ उस अर्थको जनताके समक्ष रखनेका प्रयत्न मुझे करना ही चाहिए।

सबसे पहले तो इन कार्यो तथा लेखोंका जो अर्थ नहीं है वह कह दूं। एक तो यह कि व्यक्तिगत, सामूहिक या जन-साधारणके सत्याग्रहसे संबंध रखनेवाले मेरे विचारोंमें कोई तबदीली नहीं हुई। उसी प्रकार, कांग्रेस और राजाओंके बीच अथवा राजाओं और उनकी प्रजाके बीच किस तरहका संबंध होना चाहिए इस विषयमें मेरे विचारोंमें भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ और मेरी उस रायमें भी कि सार्वभौमसत्ताने इतने दिनों तक देशी राज्योंकी प्रजाके प्रति अपने जिस कर्तव्यकी बुरी तरह अवगणना की है उसका पालन करना आज बहुत जरूरी है—कोई अन्तर नहीं पड़ा। मेरा पश्चात्ताप तो मेरी एक ही भूलके संबंधमें था, और वह यह कि जिस ईश्वरके नामपर राजकोटमें मैंने अनशन किया था उसके चरणोंमें चित्त लगाये रखनेकी और मैंने अन्तरमें अविश्वासका स्थान दिया, और वायसरायके हस्तक्षेपसे प्रभुके कार्यकी पूर्ति करनेका प्रयास किया। ईश्वरपर आधार रखनेके बदले वायसरायपर आधार रखनेमें या यों कहिये कि ठाकुर साहबको ठिकाने लगानेके लिए वायसरायको ईश्वरकी मददसे बुलानेका मैंने प्रयत्न किया। मेरा यह काम निरी हिंसाका था। इस प्रकारकी हिंसाके लिए मेरे अनशनमें जरा भी स्थान नहीं हो सकता।

इस राजकोट-प्रकरणने मेरे जीवनमें जिस नये सत्य-दर्शनकी वृद्धि की वह यह है कि ठेठ १९२०से लेकर राष्ट्रीय आंदोलनके संबंधमें जिस अहिंसाका दावा हम करते आ रहे हैं वह अद्भुत होते हुए भी सर्वथा विशुद्ध नहीं थी। अतः जो परिणाम आजतक हुए वे यद्यपि असाधारण कहे जा सकते हैं तथापि हमारी अहिंसा यदि बिलकुल विशुद्ध होती तो उसके परिणाम बहुत अधिक मूल्यवान साबित होते। मन-वाणी सहित सम्पूर्ण अहिंसाकी लड़ाईसे विरोधीमें स्थायी हिंसावृत्ति कभी पैदा हो नहीं सकती। लेकिन मैंने देखा कि देशी राज्योंकी लड़ाईने राजाओं तथा उनके सलाहकारोंमें हिंसावृत्ति पैदाकर दी है। कांग्रेसके प्रति अविश्वाससे आज उनका अन्तर भरा हुआ है। जिसे वे कांग्रेसकी दस्तंदाजी कहते हैं, उस

दस्तंदाजीकी उन्हें जरूरत नहीं। कितने ही राज्योंमें तो कांग्रेसका नाम लेना भी अप्रिय हो गया है। ऐसा होना नहीं चाहिए था।

इस अनुसन्धानका मुझपर जो असर हुआ वह बड़े महत्वका है। इसमें भावी सत्याग्रहियोंके प्रति मैं अपनी अपेक्षाओं और मार्गोंसे सख्त बन गया हूँ। इसके परिणामस्वरूप मेरी संस्था घटकर बिलकुल नगण्य हो जाय, तो मुझको उसकी चिन्ता नहीं होनी चाहिए। यदि सत्याग्रह एक ऐसा व्यापक सिद्धान्त है, जो सभी परिस्थितियोंमें लागू हो सकता है, तो मुट्ठीभर साथियोंके जरिये लड़ाई लड़नेका कोई अचूक तरीका मुझे जरूर खोज लेना चाहिए। और मैं जो नये प्रकाशकी धुंधली सी झलक देखनेकी बात करता हूँ इसका अर्थ यही है कि मुझे सत्यका दर्शन होते हुए भी अभी कोई ऐसी विश्वसनीय कार्य-पद्धति नहीं मिली कि ऐसे मुट्ठी-भर आदमी किस तरह प्रभावकारी अहिंसक लड़ाई लड़ सकते है। जैसा कि मेरे सारे जीवनमें होता आया है, संभव है कि पहला कदम उठानेके बाद ही अगला कदम सूझे। मेरी आत्मा मुझसे कहती है कि जब ऐसा कदम उठानेका समय आयेगा, तब योजना तो उसकी सामने आ ही जायगी।

मगर अधीर आलोचक कहेगा, 'समय तो प्रस्तुत ही है, आप ही तैयार नहीं हो रहे हैं।' इस आरोपको मैं नहीं मानता। मेरा अनुभव इससे उलटा है। कुछ वर्षोंसे मैं यह कहता आ रहा हूँ कि सत्याग्रह फिरसे शुरू करनेका अभी मौका नहीं। क्यों? कारण स्पष्ट है।

राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह जारी करनेका अचूक जरिया बनने जैसी कांग्रेस आज नहीं रही है। उसका कलेवर भारी हो गया है। उसमें सड़न या गन्दगी आ गयी है। कांग्रेसवादियोंमें आज अनुशासन नहीं। नये-नये प्रतिस्पर्धी समुदाय खड़े हो गये हैं, जो, अगर उनकी चले और उन्हें बहुमत प्राप्त हो जाय तो, कांग्रेसके कार्यक्रममें जड़मूलका परिवर्तन कर दें। ऐसा बहुमत वे प्राप्त नहीं कर सके, यह चीज मुझे कुछ आश्वासन देनेवाली नहीं। जिनका बहुमत है उनको भी अपने कार्यक्रममें जीवित श्रद्धा नहीं है। किसी भी दृष्टिसे महज बहुमतके बलपर सत्या-ग्रह शुरु करना व्यावहारिक कार्य नहीं। देशव्यापी सत्याग्रहके पीछे तो सारी कांग्रेसकी ताकत होनी चाहिए।

अलावा इसके, सांप्रदायिक तनातनी है, जो रोज-ब-रोज बढ़ती जा रही है। जिन विभिन्न जातियोंसे मिलकर राष्ट्र बना है उनके बीच सम्मानपूर्ण सुलह और एकताके बगैर आखिरी सत्याग्रहकी लड़ाईकी कल्पना नामुमकिन है।

अन्तमें प्रान्तीय स्वायत्त शासनको लेता हूँ। मेरा अब भी यह विश्वास है कि इस दिशामें कांग्रेसने जिस कामको अपने सरपर लिया है उसके साथ हमने उचित न्याय नहीं किया है। यह भी स्वीकार करना चाहिए कि गवर्नरोंने मिलकर मंत्रियोंके काममें बहुत कम दखल दिया है। पर दस्तंदाजी—कभी-कभी तो खीज पैदा करनेवाली दस्तंदाजी—कांग्रेसवादियों और कांग्रेस मंत्रिमण्डलोंके तरफसे हुई है। जब तक कांग्रेसी कारोबार चला रहे हैं, तबतक लोकपक्षीय

हिंसा या दंगे तो होने ही नहीं चाहिए थे। आज तो मंत्रियोंकी बहुत बड़ी शक्ति कांग्रेसवादियोंकी माँगें और विरोधको निबटानेमें खर्च होती है। अगर मंत्री लोकप्रिय नहीं है, तो उन्हें बरखास्त किया जा सकता है, और कर देना चाहिए। इसके बजाय हो क्या रहा है कि उन्हें तो काम करने दिया जाता है, पर बहुतसे कांग्रेसवादियोंका उन्हें सक्रिय सहयोग नहीं मिलता!

दूसरे सब उपायोंको खलास किये बगैर आखिरी कदम उठाना सत्याग्रहके हर एक नियमके विरुद्ध है।

इसके जवाबमें कुछ औचित्यके साथ यह जरूर कहा जा सकता है कि मैंने जो शर्तें बनायी हैं उन सबको पूरा करनेका अगर आग्रह रक्खा गया, तो सविनय कानून-भंग असंभव ही हो जायगा। क्या यह आपत्ति वजनदार कही जा सकती है? हरएक कामको स्वीकार करनेके साथ शर्तें तो उसमें रहती ही हैं। सत्याग्रह इसका कोई अपवाद नहीं। पर मेरी अन्तरात्मा मुझसे कहती है कि मौजूदा असंभव स्थितिमें छुटकारा पानेके लिए सत्याग्रहका कोई-न-कोई सक्रिय तरीका—यह जरूरी नहीं कि वह सविनय भंग ही हो—मिलना ही चाहिए। हिंदुस्तान आज ऐसी असंभव स्थितिका सामना कर रहा है, जो बहुत दिन नहीं चल सकती। समझमें आ सकने लायक समयके अन्दर या तो उसे अहिंसक लड़ाईका कोई-न-कोई तरीका ढूंढ़ निकालना ही होगा या उसे हिंसा या अराजकतामें फँसना पड़ेगा।

हरिजन सेवक
१ जुलाई १९३९

"सत्य विधायक है, अहिंसा निषेधात्मक है। सत्य वस्तु का साक्षी है; अहिंसा वस्तु होने पर भी उसका निषेध करती है। सत्य है असत्य नहीं है। हिंसा है; अहिंसा नहीं है। फिर भी अहिंसा ही होना चाहिये। यही परम धर्म है। सत्य स्वयंसिद्ध है। अहिंसा उसका सम्पूर्ण फल है; सत्य में वह छिपी हुई है। वह सत्य की तरह व्यक्त नहीं है।"

गांधीजी

अनुचित जोर

यह पूछा गया है कि–

"जिस स्वराजके लिए हम लड़ाई लड़ रहे हैं उसका क्या होगा ? गान्धीजीका अहिंसामें अगाध विश्वास, जो पहले किसी समयकी अपेक्षा आज बहुत अधिक गहरा हो गया है, उन लोगोंको कैसे सहायता पहुँचायेगा, जो जल्दी ही स्वराज्य चाहते हैं। गान्धीजी अहिंसाको जिस रूपसे देखते हैं, उस रूप पर इतना जोर देनेसे स्वराज्य क्या एक ऐसा स्वप्न तो नहीं बन जायगा जिसका पूर्ण होना ही कठिन हो ?

(गान्धीजीने अपना वक्तव्य समझाते हुए उसका यह जवाब दिया)–

जैसा कि मैंने अक्सर कहा है, मेरे लिए तो यह सच है कि स्वराज्यसे पहले अहिंसा आती है। मैं अराजकता और लालक्रान्तिके द्वारा शक्ति हासिल करनेकी जरा भी इच्छा न करूँगा, क्योंकि मै सबसे कमजोर और छोटे मनुष्यके लिए भी स्वतंत्रता चाहता हूँ और यह तभी हो सकता है, जब अहिंसा से हम स्वतंत्रता प्राप्त करें। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे तो कमजोर मर जायगा और सिर्फ ताकतवर ही सत्तापर अधिकार करेगा, उसका उपयोग करेगा।

फिर आप लोग भी, दरअसल कुछ काम करना चाहते हैं, तो अहिंसाको और सब बातोंसे पहिले रखे बगैर नहीं रह सकते। जब अहिंसाको मान लिया तब उसे और सब बातोंसे पहिले रखना ही होगा। और सिर्फ इसी हालतमें विरोधी अहिंसाका मुकाबला नहीं कर सकता। अगर ऐसा नहीं करेंगे, तो यह एक खाली पोल, और प्रभाव और शक्तिसे रहित निस्तेज वस्तु हो जायगी। एक सिपाही जब अपनी जान हथेलीपर रखकर लड़ता है, तभी उसकी दुर्दमनीय शक्तिका विरोध करना कठिन हो जाता है। अहिंसाके सिपाहीके लिए भी यही बात है।

"लेकिन इस नीचे उतरनेसे काम कैसे चलेगा ? किस तरह हमें अपने उत्तरदायी शासनका ध्येय प्राप्त करनेमें सफलता मिलेगी ?" एक दूसरे मित्रने पूछा।

आज जब हम उत्तरदायी शासनकी बातें करते हैं तब इससे रियासतोंके अधिकारी भयभीत हो जाते हैं। वे समझते हैं कि उसका परिणाम होगा लालक्रान्ति और अराजकता। उनकी दलीलमें वजन नहीं है, लेकिन फिर भी उन्हें तो ईमानदार समझना चाहिए। अगर आप मेरी सलाह समझ लें, तो आप कहेंगे 'कुछ समयके लिए हम स्वराज्यको भूल जायँ। हम जनताके प्राथमिक अधिकारोंको प्राप्त करनेके लिए लड़ेंगे, ताकि रिश्वतखोरी आदि खराबियाँ दूर हो सकें।' संक्षिप्तमें, आप अपना सारा ध्यान शासन-प्रबंधकी तफसीली बातोंमें लगा देंगे। तब अधिकारी डरेंगे नहीं और इससे आपको उत्तरदायी शासनका सारतत्व मिल जायगा। भारतवर्षमें मैंने जो कुछ कार्य किया है

उसका यही इतिहास है। यदि मैं सिर्फ स्वराज्यकी बात करता, तो मैं बिलकुल असफल रह जाता। तफसीलकी बातोंपर ध्यान देनेसे हम शक्ति ग्रहण करते गये।

दांडी-कूचके समय मैंने क्या किया था? मैंने पूर्ण स्वराज्यकी अपनी मांगको कम करके सिर्फ ११ माँगों तक सीमित कर दिया था। पहले पहल तो मोतीलालजी मुझपर बहुत बिगड़े। "इस तरहसे झंडा नीचा करनेसे आखिर आपका मतलब क्या है?" उन्होंने कहा। लेकिन उन्होंने जल्दी ही देख लिया कि अगर उन माँगोंको मान लिया जाय, तो आजादी हमारा दरवाजा खटखटाने लगेगी।

मैं अपने दिलकी उथल-पुथल भी आपको समझा दूं। जैसा कि आपको बता चुका हूँ, मैंने समझा था कि रियासतोंमें हम जल्दी ही उत्तरदायी शासन हासिल कर लेंगे। लेकिन अब हमें मालूम हुआ है कि हम सब लोगोंको अहिंसाके मार्गपर एकदम अपने साथ नहीं ले जा सकते। आप कहते हैं कि सिर्फ थोड़ेसे गुण्डे ही हिंसा करते हैं। लेकिन अहिंसात्मक स्वराज्य प्राप्त करनेकी शक्तिका अर्थ है कि उससे पहले हममें गुण्डोंपर ही काबू पानेकी ताकत हो, जैसे कि असहयोगके दिनोंमें हमने क्षणिक शक्ति प्राप्त कर ली थी। अगर आपका हिंसाकी ताकतों पर भी पूरा काबू है, अगर आप सर्वोच्च ब्रिटिश सत्ताकी बिना परवा किये या मेरी अथवा काँग्रेसकी बाहरी सहायताकी अपेक्षाके बिना आखिरी दमतक लड़ाई जारी रखनेके लिए तैयार हैं, तो आपको कुछ समयके लिए भी अपनी माँग कम करनेकी जरूरत नहीं। तब तो दरअसल आप मेरी सलाहकी जरूरत ही नहीं समझेंगे।

लेकिन जैसा कि आप भी मानते हैं, आपकी हालत ऐसी नहीं है। जहाँ तक मैं जानता हूँ भारतकी और भी किसी रियासतमें ऐसी स्थिति होती, तो मेरे कहे बगैर भी कई स्थानोंपर सत्याग्रह स्थगित नहीं किया जाता।

हरिजन सेवक
१ जुलाई, १९३९

❀

"वे तो मरना जानते हैं उन्हें मैं अपनी अहिंसा सफलतापूर्वक सिखा सकता हैं, जो मरनेसे डरते हैं उन्हें मैं अहिंसा नहीं सिखा सकता।"

—गांधीजी

अहिंसा बनाम हिंसा

एक सप्ताह पहले मैंने राजकोटके सवालको छोड़ा था वहींसे मुझे फिर उसपर विचार करना चाहिए। सिद्धान्तरूपसे यदि किसी एक भी व्यक्तिमें अहिंसाका पर्याप्त विकास हो गया, तो वह अपने क्षेत्रमें हिंसाका भले ही वह बहुत व्यापक और उग्ररूपमें हो—मुकाबला करनेके साधनोंको ढूंढ़ सकता है। मैंने बारबार अपनी अपूर्णता स्वीकार की है। मैं पूर्ण अहिंसाका मिसाल नहीं हूँ। मैं तो अभी विकास कर रहा हूँ। अहिंसाका जितना विकास मुझमें अभीतक हुआ है, अबतककी उत्पन्न परिस्थितियोंका मुकाबला करनेके लिए वह काफी पाया गया है। लेकिन आज चारों ओर हिंसामय वातावरणका मुकाबला करनेके लिए मैं अपनेको असहाय अनुभव करता हूँ। राजकोट संबंधी मेरे वक्तव्यपर 'स्टेट्समैन'में एक बहुत चुभता हुआ लेख निकला था। संपादकने उसमें बताया था कि अंग्रेज लोगोंने कभी हमारे आन्दोलनको सच्चा सत्याग्रह नहीं समझा। लेकिन व्यवहार-कुशल होनेकी वजहसे उन्होंने इस झूठी कल्पनाको जारी रहने दिया, हालाँ कि वे जानते थे कि यह भी एक हिंसात्मक विद्रोह था। यह प्रत्यक्षरूपसे हिंसात्मक इसलिए नहीं हो सका, क्योंकि विद्रोहियोंके पास हथियार नहीं थे। मैं अपनी याददाश्तसे ही 'स्टेट्समैन'से यह दे रहा हूँ। जब मैंने यह लेख पढ़ा मैंने महसूस किया कि इस दलीलमें वजन है। उन दिनोंकी घटनाओंको जैसा मैं देखता था उस तरह यद्यपि उस आंदोलनको विशुद्ध अहिंसात्मक संघर्ष मानता था, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि सत्याग्रहियोंमें हिंसा अवश्य मौजूद थी। मुझे यह भी स्वीकार करना चाहिए कि अगर मुझमें अहिंसाका पूर्ण भान होता, तो मैं इससे थोड़ा-सा विचलित होनेको जोरोंसे महसूस करता और मेरी यह भावुकता अहिंसामें किसी तरहकी मिलावटके बरखिलाफ विद्रोह कर बैठती।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हिंदुओं और मुसलमानोंने एक साथ मिलकर सत्याग्रह करनेमें मेरी आँखोंपर पट्टी बाँध दी और मैं अहिंसाको नहीं देख सका, जो बहुतसे लोगोंके दिलोंमें दुबककर बैठी थी। अंग्रेज लोग बड़े कुशल राजनीतिज्ञ शासक हैं। वे तो सही रास्ता पसन्द करते हैं, जिसमें कम से कम संघर्ष हो। उन्होंने जब देखा कि कांग्रेस जैसी बड़ी संस्थाको डरा-धमकाकर कुचलनेकी अपेक्षा उससे समझौता कर लेना ज्यादा फायदेमन्द है, तब वे वहाँतक झुक गये जहाँतक झुकना जरूरी समझा। मेरी अपनी यह धारणा है कि हमारा पिछला संघर्ष क्रियामें प्रधानतः अहिंसात्मक था। भविष्यके इतिहास-लेखक भी इसे इसी रूपमें ग्रहण करेंगे। लेकिन सत्य और अहिंसाके शोधकके नाते मुझे यदि अहिंसा हृदयमें नहीं है, तो सिर्फ क्रियामें देखकर संतोष नहीं कर लेना चाहिए। पहाड़की चोटीपरसे मुझे यह घोषणा करनी चाहिए कि उन दिनोंकी अहिंसा उस अहिंसासे बहुत नीचे थी, जिसका कि मैं प्रायः वर्णन करता रहा हूँ।

दिल दिमागके सहयोगके बिना सिर्फ क्रियाएँ अहिंसाका वांछनीय परिणाम नहीं निकलता। हमारी अपूर्ण अहिंसाकी सफलता आज सबके सामने है। हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच जो झगड़ा चल रहा है, उसे देखिये दोनों एक दूसरेसे लड़नेके लिए कमर कस रहे हैं। असहयोगके दिनोंमें जिस हिंसाको दिलोंमें आश्रय दे रखा था, आज वह हमपर ही हावी हो गयी है। वह हिंसात्मक शक्ति, जो जनतामें पैदा हो चुकी थी, किन्तु एक उद्देश्यको पानेके प्रयत्नमें जिसे बाँध रक्खा था, आज खुल पड़ी है और हम उसका आपसमें एक दूसरेके खिलाफ इस्तेमाल कर रहे हैं।

यही बात, भले ही कुछ कम उग्र रूपमें हो, कांग्रेसियोंके आपसी झगड़ोंमें और काँग्रेसी सरकारोंके दमनकारी उन उपायोंमें देखी जा सकती है, जिन्हें वे अपने प्रान्तका शासन-प्रबंध करनेके लिए लाचार होकर इस्तेमालमें ला रहे हैं।

यह कहानी साफ बता रही है कि किस तरह आजका सारा वातावरण हिंसासे पूर्ण हो गया है। मुझे यह भी आशा है कि इससे यह भी साफ हो जायगा कि जबतक इस वातावरणको ही बिलकुल बदल न दिया जायगा, अहिंसात्मक सार्वजनिक आन्दोलनका चलना असंभव है। चारों ओरसे होनेवाली घटनाओंकी ओरसे आँखें बन्द कर लेना खुद आफत बुलाना है। मुझे यह सलाह दी गयी कि अगर मैं सार्वजनिक सत्याग्रहकी घोषणा कर दूं तो सब अन्दरूनी झगड़े खत्म हो जायेंगे। हिन्दू-मुसलमान आपसी मतभेद दूर करके मिल जायेंगे और काँग्रेसी आप ही ईर्ष्या-द्वेष और अधिकारोंकी लड़ाई भूल जायेंगे। लेकिन स्थितिका मेरा अध्ययन बिलकुल विपरीत है। यदि आज अहिंसाके नामपर कोई सामूहिक आन्दोलन शुरू कर दिया गया तो, वह स्वयं संगठित और कुछ हालतोंमें संगठित हिंसामें परिणत हो जायगा। इससे काँग्रेस बदनाम हो जायगी, स्वराज्य-प्राप्तिके काँग्रेसके युद्धपर आफतका पहाड़ टूट पड़ेगा और बहुतसे घर तबाह हो जायेंगे। यह मुमकिन है कि जो मैं चित्र खींच रहा हूँ, मेरी अपनी दुर्बलताका परिणाम है और यह बिलकुल झूठा हो। अगर ऐसा है, तो जबतक मैं अपनी उस दुर्बलताको दूर न कर दूं, मैं किसी ऐसे आन्दोलनका नेतृत्व नहीं कर सकता जिसमें महान दृढ़ संकल्प और शक्तिकी जरूरत हो।

लेकिन अगर मैं कोई शुद्ध प्रभावकारी अहिंसात्मक उपायकी तलाश नहीं करता, तो हिंसाका फूट पड़ना भी निश्चित-सा है। जनता अपनी इच्छाओं और शक्तिको प्रगट करना चाहती है। उसे सिर्फ उस रचनात्मक कार्यमें संतोष नहीं है, जो मैंने बताया है और जिसे काँग्रेसने सर्वसम्मतिसे पास कर लिया है। जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूँ रचनात्मक कार्यक्रमकी ओर लोगोंका पूरा ध्यान न देना ही इस बातका सबूत है कि काँग्रेसियोंने अहिंसाको केवल बाहरी तौरसे स्वीकार किया है, वह उनके दिलकी चीज नहीं बनी।

लेकिन अगर हिंसा फूट पड़ी, तो वह बिना किसी कारणके नहीं फूटेगी। हमारा स्वराज्य-स्वप्न अभी बहुत दूर है। केन्द्रीय सरकार आमदनीका जो ८० फी सदी भाग खुद

हड़प जाती है, लोगोंको पीस रही है और उनकी आकांक्षाओंको कुचल रही है, उसकी गैर-जिम्मेदारी अब दिन-ब-दिन असह्य होती जा रही है ।

अधिकांश रियासतोंमें भी भीषण निरंकुशताकी भावना बढ़ रही है । मैं इस जिम्मेदारीको स्वीकार करता हूँ कि मैंने कुछ रियासतोंमें 'सविनय-भंग' आन्दोलनको स्थगित करा दिया है । इसका परिणाम हुआ है प्रजा और राजा—दोनोंका नैतिक पतन । लोग तो पस्त-हिम्मत हो गये हैं, और सोचने लगे हैं कि सब कुछ चला गया है । राजाओंका पतन उनके इस विचारमें है कि अब प्रजासे डरनेकी कोई जरूरत नहीं । उसे कोई असली अधिकार देनेकी जरूरत नहीं । दोनों गलतीपर हैं । इस परिणामसे मैं निराश नहीं हुआ । दर-असल, मैंने इन परिणामोंकी पेशीनगोई पहले ही कर ली थी, जब मैं जयपुरके कार्यकर्ताओंके साथ इस सलाहपर विचार कर रहा था, कि वे सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दें, भले ही वह सत्याग्रह नियमों और नियंत्रणोंमें रहकर चलाया जा रहा था । प्रजामें नैतिक पतन तो यह बताता है कि उनके विचार तथा वाणीमें अहिंसा नहीं थी । और जब जेल जाने और भारी प्रदर्शनोंका जोश और नशा खत्म हुआ, लोगोंने यह समझा कि लड़ाई खत्म हो गयी । राजाओंने भी एकदम यह परिणाम निकाल लिया कि सत्याग्रहियोंके विरुद्ध कठोर बर्ताव बरतकर और भोलेभाले लोगोंको दिखाऊ सुधारों द्वारा फुसलाकर वे अपनी निरंकुशताको और भी दृढ़ कर सकते हैं ।

लेकिन प्रजा और राज्य दोनों इस तरह सही परिणामपर पहुँच सकते थे । प्रजा तो मेरी सलाहकी गहराईको पहचानती और शक्ति और दृढ़ संकल्पसे रचनात्मक कार्य द्वारा अपनी शक्ति और क्षमताको बढ़ाती । और राजा लोग सत्याग्रह बन्द होनेसे उत्पन्न अवसरका लाभ उठाकर, न्यायकी खातिर न्याय करते, अपनी प्रजाके बुद्धिमान किन्तु अग्रगामी लोगोंको कुछ वास्तविक सुधार देकर संतुष्ट करते । लेकिन यह तभी हो सकता था, जब कि वे समयकी भावनाको पहचानते । आज भी प्रजाके लिए या राजाओंके लिए बहुत देर नहीं हुई । वे अब भी उस सचाईको समझ सकते हैं ।

इस सिलसिलेमें मुझे सर्वोच्च सत्ताको भूलना नहीं चाहिए । इस प्रकारके लक्षण मुझे प्रतीत हो रहे हैं कि सर्वोच्च सत्ता राजाओंको दी गयी अपनी इस पिछली घोषणापर पछता रही है कि प्रजा जो सुधार चाहती है, उन्हें देनेकी राजाओंको पूरी आजादी है । इस तरहकी कानाफूसी जोरोंसे होती हुई मालूम दे रही है कि घोषणाका अक्षरशः पालन करना लाजिमी नहीं है । यह रहस्य सभी जानते हैं कि राजाओंमें ऐसा कोई भी काम करनेका साहस नहीं है जिससे उनके ख्यालमें सर्वोच्च सत्ता नाराज हो सकती है । वे ऐसे लोगोंसे बात भी नहीं करना चाहेंगे, जिनसे कि उनकी बातचीत सर्वोच्च सत्ता न पसंद करती हो । जब राजाओंपर इतना भारी प्रभाव डाला जाता है, यह स्वाभाविक है कि बहुतसी रियासतोंमें शासकोंकी भीषण निरंकुशताके लिए सर्वोच्च सत्ताको भी जिम्मेदार माना जाय । इसलिए कभी इस अभागे देशमें हिंसा फूट पड़ी तो, उसकी जिम्मेदारी सभीपर,

सर्वोच्च सत्तापर, राजाओंपर और सबसे ज्यादा कांग्रेसियोंपर पड़ेगी। सर्वोच्च सत्ता और राजाओंने कभी अहिंसक होनेका दावा नहीं किया। उनकी शक्तिका आधार और स्रोत ही हिंसाका प्रयोग है। लेकिन कांग्रेसने १९२०से अहिंसाको अपनी निश्चित नीतिके रूपमें स्वीकार कर रखा है और इसमें सन्देह नहीं कि उसने इसपर चलनेकी भी कोशिश की है। लेकिन चूंकि कांग्रेसियोंने अपने दिलोंमें अहिंसाको स्थान नहीं दिया, इसलिए उन्हें इस दोषका फल भुगतना ही चाहिये, भले ही वह दोष किसी इरादेसे न किया गया हो। अबके नाजुक समयमें वह दोष ऊपर फूट पड़ा है और ऐसा लगता है कि किसी दोषपूर्ण उपायसे इस समस्याका हल नहीं हो सकता। अहिंसाका उद्देश्य उत्पीड़न या दबाव किसी भी तरह नहीं हो सकता। इसका तो उद्देश्य हृदय-परिवर्तन है। हम राजाओंका दिल नहीं बदल सके, हम अंग्रेज शासकोंका दिल नहीं बदल सके। यह कहना बेकार है कि शासकोंको अपनी इच्छासे अपने अधिकार छोड़ देनेके लिए प्रेरित करना असंभव है। मैंने यह दावा किया है कि सत्याग्रहका एक नया परीक्षण है। अब कांग्रेसी इसपर एक बार सच्चे दिलसे अमल करेंगे तब समय ही बतायेगा कि यह सफल हुआ है या असफल। अगर एक नीतिपर भी ईमानदारीसे चलना हो तो पूरे दिलसे चलना चाहिए। हमने ऐसा नहीं किया। इसलिए पहले इसके कि सर्वोच्च सत्तापर राजाओंसे हम यह उम्मीद करें कि वे न्याय करें, हम कांग्रेसियोंको चाहिए कि हम स्वयं अपनेको बदलें।

लेकिन अगर कांग्रेसी अहिंसाकी ओर आजतक जितना बढ़ चुके हैं उससे आगे न बढ़ें और सर्वोच्च सत्ता व राजाओंनेभी अपनी इच्छासे आवश्यक कदम न उठाया, तो देशको हिंसाके लिए तैयार रहना चाहिए, बशर्ते कि नये 'टेकनिक'ने अहिंसात्मक संघर्षका कोई ऐसा तरीका न निकाल लिया हो, जो हिंसाके प्रभावशाली रूपमें सफल हो सकता हो और बुराइयोंको दूर कर सकता हो। हिंसा सफल नहीं होगी, सिर्फ यह हकीकत हिंसाको फूट पड़नेसे रोक नहीं सकती। महज वैधानिक आन्दोलनसे काम न चलेगा।

हरिजन सेवक
८ जुलाई, १९३९

"मेरा मतलब यह है कि हमारी अहिंसा उन कायरों की न हो जो लड़ाईसे डरते हैं, खून से डरते हैं; हत्यारों की आवाजसे जिनका दिल कांपता है। हमारी अहिंसा तो पठानोंकी अहिंसा होनी चाहिये।"

—गांधीजी

दोषी नहीं

सत्याग्रह संबंधी कांग्रेसी प्रस्तावपर इस समय जो वाद-विवाद चल रहा है, उसके बारेमें डा० राममनोहर लोहियाने मुझे एक लम्बा और युक्तियुक्त पत्र भेजा है। उसका एक अंश ऐसा है, जिसपर सार्वजनिक रूपसे विचार करनेकी आवश्यकता है। वह यह है—

"आपके निश्चित कार्यक्रममें सत्याग्रहका जो सिद्धान्त है उससे जरा भी इधर-उधर होना आप स्वीकार नहीं करेंगे। क्या यह संभव नहीं है कि आपके कार्यक्रमके अलावा अन्य कार्यक्रमोंका आधार बनानेके लिए सत्याग्रहके सिद्धान्तको विश्व-व्यापी बना दिया जाय? शायद यह संभव नहीं है, लेकिन आपके खिलाफ मेरी यही दलील है कि आपने ऐसे किसी प्रयोगको प्रोत्साहन नहीं दिया है। मंत्रिमंडल संबंधी और रचनात्मक हलचलके आपके कार्यक्रमको आज लोग सर्वांश पर्याप्त नहीं समझते, इसलिए वे किसानों और मजदूरोंके कार्यक्रमोंको आज़मा रहे हैं। ये नये कार्यक्रम ऐसे हैं, जिनमें सामान्य रूपमें सत्याग्रहकी कोई हलचल न होनेपर भी स्थानीय हलचल बनी रहती है। सामान्य रूपमें सत्याग्रह शुरू करनेका तरीका जबतक आपको न मिल जाय, तबतक क्या आप इन छोटे सत्याग्रहोंको रोक देंगे? ऐसा करनेमें उस अराजकताके फैलनेका डर है जो दमनसे उत्पन्न होती है। अहिंसात्मक सामूहिक कारवाई उन निराली और बहुत बेशकीमत सौगातोंमेंसे एक है, जो सारे इतिहासमें मनुष्य-जातिने प्राप्त की है; मगर यह हो सकता है कि हम उसको संभाल कर रखना और जारी रखना न जानें।"

मेरे निश्चित कार्यक्रममें सत्याग्रहका जो स्थान है उससे जरा भी इधर-उधर होनेको न केवल मैंने मना ही नहीं किया बल्कि अक्सर नये कार्यक्रमोंको भी निमंत्रित किया है।

यह मैं पहले ही बतला चुका हूँ कि कांग्रेसवादियोंकी उदासीनताका कारण यह नहीं है कि उस कार्यक्रममें कुदरतन कोई खराबी है, बल्कि दरअसल बात यह है कि अहिंसामें उनका जीवित विश्वास नहीं है। भला इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती है कि विभिन्न जातियोंमें पूर्ण एकता हो, अस्पृश्यता दूर हो जाय, शराबकी दुकानें बन्द करके शराबसे होनेवाली आमदनीका बलिदान कर दिया जाय और मिलके कपड़ेकी जगह खादी ले ले? मेरा तो कहना है कि हिंदू-मुसलमान अपने आपसके अविश्वासको दूर करके सगे भाइयोंकी तरह न रहें, हिंदू अगर अस्पृश्यताके अभिशापको छोड़कर अपनेको शुद्ध न करें और इस प्रकार उन लोगोंके साथ निकट संपर्क स्थापित न करें जिन्हें सदियोंसे उन्होंने समाजसे बहिष्कृत कर रखा है, भारतके धनी पुरुष-स्त्री अगर अपने आप अपने ऊपर इसलिए कर न लगायें कि जो गरीब लोग शराब तथा अन्य नशोंके मजबूरन शिकार होते हैं, शराब तथा अन्य नशीली चीजोंकी दुकानें बन्द होकर उनके लिए वह प्रलोभन न रहे, और अन्तमें लाखों अधभूखोंके साथ तादात्म्य करनेके लिए अगर हम मिलके कपड़े का शौक छोड़कर भारतकी झोपड़ियोंमें लाखों हाथोंसे बननेवाली खादीको न अपना लें तो अहिंसात्मक

स्वराज्य असंभव है। रचनात्मक कार्यक्रमके खिलाफ जो कुछ भी लिखा गया है, उसमें उसके वास्तविक गुण या अहिंसात्मक स्वराज्यकी दृष्टिसे उसके महत्वके खिलाफ संतोषजनक दलील एक भी नहीं मिली है, बल्कि मैं तो यह कहनेका साहस करता हूँ कि अगर सब कांग्रेसवादी अपनी शक्ति इस रचनात्मक कार्यक्रमपर केन्द्रित कर दें, तो देशभरमें अहिंसाका वातावरण जल्दी ही पैदा हो जायगा जिसकी सौ फी सदी सत्याग्रहके लिए आवश्यकता है।

डा० लोहियाने संभावित नये कार्यक्रमके रूपमें किसानोंकी हलचलका उल्लेख किया है। मुझे खेदपूर्वक यह कहना पड़ता है कि अधिकांश मामलोंमें किसानोंको अहिंसात्मक कार्यकी शिक्षा नहीं दी जा रही है। उन्हें तो लगातार उत्तेजनाकी हालतमें तैयार रखा जा रहा है और उनमें ऐसी आशाएँ पैदा की जा रही हैं जो हिंसात्मक संघर्षके बगैर कभी पूरी नहीं हो सकतीं। यही बात मजदूरोंके विषयमें कही जा सकती है। मेरा अपना अनुभव तो मुझे यही बतलाता है कि मजदूर-किसान दोनोंको प्रभावकारक अहिंसात्मक कार्यके लिए संगठित किया जा सकता है, बशर्ते कि कांग्रेसवाले ईमानदारीसे इसके लिए प्रयत्न करें। लेकिन अगर अहिंसात्मक कार्यक्रमकी अन्तिम सफलताके बारेमें उनका विश्वास न हो, तो वे ऐसा नहीं कर सकते। इसके लिए जो कुछ जरूरत है वह यही है कि मजदूर-किसानोंको इसकी उपयुक्त शिक्षा दी जाय। उन्हें यह बतलानेकी जरूरत है कि अगर वे उपयुक्त रूपसे संगठित हों तो पूंजीपतियोंको अपनी पूंजीसे जो संपत्ति और आसायश मिलेगी उससे ज्यादा सम्पत्ति और आसायश वे अपने परिश्रमसे प्राप्त कर सकते हैं। फर्क सिर्फ इतना ही है कि पूंजीपतियोंका रुपयेके बाजारपर नियंत्रण रहता है, जब कि मजदूरोंका मजदूरीके बाजारपर उतना नियंत्रण नहीं होता। यह जरूर है कि मजदूरोंके चुने हुए नेताओंने उनकी अच्छी तरह सेवा की होती तो उन्हें उस अवश्य शक्तिका अच्छी तरह भान हो जाता जो अहिंसाकी उपयुक्त शिक्षा मिलनेपर प्राप्त होती है। लेकिन इसके बजाय मजदूरोंको अपनी माँगें पूरी करानेके लिए डरानेवाले उपायोंसे काम लेनेपर आधार रखना सिखलाया जा रहा है। जिस तरहकी शिक्षा आज आमतौरपर मजदूरोंको मिल रही है उससे वे अज्ञानी बने रहते हैं और अंतिम बलके रूपमें हिंसापर ही आधार रखते हैं। इस तरह किसानों या मजदूरोंकी वर्तमान हलचलको सत्याग्रहकी तैयारीके लिए नया कार्यक्रम मानना मेरे लिए संभव नहीं है।

अपने आसपास जो कुछ मैं देख रहा हूँ, वह निश्चय ही अहिंसात्मक लड़ाईकी ही नहीं बल्कि हिंसात्मक विस्फोटकी भी तैयारी है, फिर वह चाहे अनजाने और बिना चाहे ही क्यों न हो। इसे अगर मेरे पिछले बीस वर्षोंके प्रयत्नका फल बतलाकर मुझे इसके लिए जिम्मेवार ठहराया जाय तो मुझे अपना दोष स्वीकार करनेमें कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। मैं ही इन पृष्ठोंमें इस बारेमें बहुत कुछ नहीं कह चुका हूँ? लेकिन मेरे दोष-स्वीकारसे तबतक कोई लाभ नहीं होगा जबतक उसके फलस्वरूप हम उलटे न लौटें, या जो गलती हम कर चुके हैं उसे दुरुस्त कर लें। इसका मतलब यह हुआ कि पूर्ण स्वाधी-

सत्ताकी प्राप्तिके लिए अहिंसात्मक उपायोंमें उचित विश्वास रखा जाय। जब हमारे अन्दर ऐसा विश्वास हो जायगा तब कांग्रेसके अन्दर होनेवाली सब तू तू मैं-मैं बन्द हो जायगी, सत्ताके लिए फिर व्यर्थके झगड़े-टण्टे न होंगे और एक दूसरेपर कीचड़ उछालनेके बजाय परस्पर सहायताकी भावना होगी। लेकिन यह हो सकता है कि कांग्रेसवादी यह विश्वास करने लगे हों कि मेरी व्याख्यावाली अहिंसा अब निकम्मी हो गयी है या उसको प्राप्त करना संभव नहीं है। उस हालतमें कांग्रेसवादियोंके सब दलोंका एक नियमित या अनियमित सम्मेलन हो या कांग्रेस महासमितिकी विशेष बैठक हो, और उसमें इस बातका विचार किया जाय कि क्या ऐसा वक्त नहीं आ गया है जब हम अहिंसाकी नीति और उसके फलस्वरूप बने हुए रचनात्मक कार्यक्रमपर फिरसे विचार करें और ऐसा कोई कार्यक्रम बनावें जो कांग्रेसियोंकी वर्तमान मनोवृत्तिके अनुकूल हो? यह हरएक कांग्रेसवादीका काम है कि वह बारीकीके साथ आत्म-निरीक्षण करके इस मुख्य समस्यापर विचार करे। गिरावटकी नीतिपर चलना न तो कांग्रेसके लिए प्रतिष्ठाकी बात है न इसमें उसकी सुरक्षा ही है। इस तरहके सम्मेलनको मैं पसन्द करूँगा जिससे हम यह भूल जायँ कि हम अलग-अलग दलोंसे संबंधित हैं और यह याद रखें कि हम शुरूसे अन्ततक राष्ट्रके ऐसे सेवक हैं। जिन्होंने एक मनसे राष्ट्रकी आजादीकी लड़ाई लड़नेकी शपथ ले रक्खी है। आज तो कांग्रेसमें फूट पड़ रही है, जो हर्गिज न होनी चाहिए।

हरिजन सेवक
२९ जुलाई, १९३९

❋

युद्ध संबन्धी-प्रस्ताव

युद्ध संबंधी प्रस्तावपर भी मेरी पूरी हार हुई। मुझसे मसविदा तैयार करनेके लिए कहा गया था। इसी तरह पं० जवाहरलाल नेहरूसे भी कहा गया था। अपने मसविदेपर मुझे गर्व था, पर जल्दी ही मेरा गर्व दूर हो गया। मैंने देखा कि जबतक मैं दलील और आग्रहसे काम न लूं मेरा प्रस्ताव पास नहीं हो सकता, लेकिन ऐसी इच्छा मुझे नहीं थी। तब हमने जवाहरलालजीका प्रस्ताव सुना और मैंने तुरन्त यह स्वीकार कर लिया कि उसमें मेरे प्रस्तावसे अधिक सच्चाई है और वह देशके, बल्कि मिलाकर कार्य-समितिके मतको अच्छी तरह व्यक्त करता है। मेरा प्रस्ताव तो पूर्णतः अहिंसापर आधार रखता था। कांग्रेस अगर दिलसे अहिंसापर, उसके पूरे रूपपर विश्वास करती हो, फिर वह चाहे नीतिके तौरपर ही क्यों न हो, तो यह उसकी कसौटीका समय था। लेकिन कुछ व्यक्तिगत अपवादोंको

छोड़कर कॉंग्रेसजन यह मानते हैं, कि सत्ता प्राप्त करनेके लिए सरकारसे लड़नेमें ही इसका उपयोग है। लेकिन कांग्रेसके पास संसारके लिए अहिंसाका कोई सन्देश नहीं है, चाहे अपने खुशीसे मैं भले ही मानूं कि कांग्रेसके पास ऐसा संदेश है। दोनों प्रस्तावोंके सारतत्वमें कोई बड़ा फर्क हो यह जरूरी नहीं है। खुद हिंदुस्तानमें जो हिंसा हो रही है और कांग्रेसी सरकारोंको जो पुलिस और फौजकी मदद लेनेके लिए मजबूर होना पड़ा उसको देखते हुए संसारके सामने अहिंसाकी घोषणा करना मजाक ही मालूम पड़ता है। उसका न तो हिंदुस्तानपर कोई असर पड़ता न संसारपर। इतनेपर भी अगर खुद अपने तईं में सच्चा हूं तो जो प्रस्ताव मैंने बनाया उसके सिवा और कोई नहीं बन सकता था। उसका जो नतीजा हुआ उसने यह साबित कर दिया है कि कांग्रेससे अपना बाजाब्ता संबंध तोड़कर मैंने ठीक ही किया।

कार्य-समितिकी बैठकमें मैं इसलिए शरीक नहीं हुआ कि उसके प्रस्तावों या उसकी सामान्य नीतिपर मेरी छाप पड़े। मैं तो अहिंसाके अपने मिशनको पूर्ण करनेके लिए ही उनमें शामिल हुआ। जबतक वे लोग मेरी उपस्थिति चाहते हैं, मैं उनके कामों और उनके द्वारा कांग्रेसजनोंके आचरणमें अहिंसापर जोर देनेके लिए वहाँ चला जाता हूँ। हम सब एक ही मार्गके यात्री हैं। वे, सब यदि हो सके तो पूरी तरह मेरे साथ चलेंगे। लेकिन जैसे मैं अपने तईं सच्चा रहना चाहता हूँ इसी तरह वे भी अपने तईं और उस देशके प्रति सच्चे रहना चाहते हैं जिसका कि इस समय वे प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। मैं जानता हूँ कि अहिंसाकी प्रगति जाहिरा तौरपर बहुत धीमी प्रगति है। लेकिन अनुभवने मुझे बतलाया है कि हमारे सम्मिलित लक्ष्यका यही सबसे निश्चित मार्ग है। लड़ाई और शस्त्रास्त्रसे न तो भारतको मुक्ति मिल सकती है, न संसारको। हिंसा तो न्याय-प्राप्तिके लिए भी निष्फल साबित हो चुकी है। अपने इस विश्वासके साथ अहिंसामें पूरी श्रद्धा रखनेमें अगर कोई मेरा साथी न हो, तो मैं अकेला ही इस पथपर चलनेके लिए भी तैयार हूँ।

हरिजन सेवक
२६ अगस्त, १९३९

❀

"दया की निर्दयताके सामने अहिंसा की हिंसाके सामने, प्रेमकी द्वेषके सामने और सत्यकी झूठ के सामने ही परीक्षा हो सकती है। यह बात सही हो तो यह कहना गलत होगा कि खूनीके सामने अहिंसा बेकार है। हाँ, यों कह सकते हैं कि खूनीके सामने अहिंसाका प्रयोग करना अपनी जान देना है। लेकिन इसीमें अहिंसाकी परीक्षा है।" —गांधीजी

हर हिटलरसे अपील

गत चौबीस अगस्तको लन्दनसे एक बहिनने मुझे यह तार दिया—

'कृपा करके कुछ कीजिये। दुनिया आपकी रहनुमाईकी राह देख रही है।'

लन्दनसे दूसरी बहिनका तार मुझे यह मिला—

'मैं आपसे अनुरोध करती हूं कि पशुबलमें न होकर विवेकमें आपकी जो अटल श्रद्धा है उसे शासकों और प्रजाके सामने अविलम्ब प्रगट करनेका विचार करें।'

मैं इस आसन्न विश्व-संकटके बारेमें कुछ कहनेसे हिचकिचा रहा था, जिसका कुछ राष्ट्रोंके ही नहीं बल्कि सारी मानवजातिके हितपर असर पड़ेगा। मेरा ऐसा ख्याल है कि मेरे शब्दोंका उनलोगों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, जिनपर लड़ाईका छिड़ना या शान्तिका कायम रहना निर्भर करता है। मैं जानता हूं कि पश्चिमके बहुतसे लोग समझते हैं कि मेरे शब्दोंकी वहाँ प्रतिष्ठा है। मैं चाहता हूं कि मैं भी ऐसा समझता। चूंकि मैं ऐसा नहीं समझता, इसलिये मैं चुपचाप ईश्वरसे प्रार्थना करता रहा कि वह हमें युद्धके संकटसे बचाये। लेकिन यह घोषणा करनेमें मुझे जरा भी हिचकिचाहट नहीं मालूम होती कि मेरा विवेकमें विश्वास है। अन्यायके दमनके लिए या झगड़ोंके निपटारेके लिए अहिंसाका दूसरा नाम ही विवेक है। विवेकका अर्थ मध्यस्थका किया हुआ किसी झगड़ेका बाध्यकारी निर्णय अथवा युद्ध नहीं है। मैं अपने विश्वासपर सबसे अधिक जोर यही कहकर दे सकता हूँ कि यदि मेरे देशको हिंसाके द्वारा स्वतंत्रता मिलना संभव हो तो भी मैं स्वयं उसे हिंसाके द्वारा प्राप्त न करूँगा। 'तलवार से जो मिलता है वह तलवारसे हर लिया जाता है'—इस बुद्धिमानोंके कथनमें मेरा विश्वास कभी नष्ट नहीं हो सकता। मेरी यह कितनी प्रबल इच्छा है कि हर हिटलर संयुक्तराष्ट्रके राष्ट्रपतिकी अपीलको सुनें और अपने दावेकी जांच मध्यस्थोंको करने दें जिनके चुननेमें उनका उतना ही हाथ होगा जितना कि उन लोगोंका जो उनके दावेको ठीक नहीं समझते।

हरिजन सेवक
२ सितम्बर, १९३९

पहेलियाँ

एक प्रसिद्ध कांग्रेसवादी पूछते हैं—

"(१) इस युद्धके बारेमें अहिंसासे मेल खानेवाला आपका व्यक्तिगत रुख क्या है?

(२) पिछले महायुद्धके वक्त आपका जो रुख था वही है या भिन्न?

(३) अपनी अहिंसाके साथ आप कांग्रेससे, जिसकी नीति इस संकटमें हिंसापर आधार रखती है, कैसे सक्रिय सम्पर्क रखेंगे और उसकी कैसे मदद करेंगे?

(४) इस युद्धका विरोध करने या उसे रोकनेके लिये आपकी ऐसी ठोस तजवीज क्या है जिसका कि आधार अहिंसापर हो?"

इन प्रश्नोंके साथ मेरी ऊपरसे दिखलायी पड़नेवाली असंगतियों या मेरी अगम्यताकी लम्बी और मित्रतापूर्ण शिकायत भी है। ये दोनों ही पुरानी शिकायतें हैं, जो शिकायत करनेवालों-की दृष्टिसे तो बिलकुल वाजिब हैं, पर मेरी अपनी दृष्टिसे बिलकुल गैरवाजिब हैं। इसलिए अपने शिकायत करनेवालों और मुझमें मतभेद तो होगा ही। मैं तो सिर्फ यही कहूंगा, कि जब मैं कुछ लिखता हूँ तो यह कभी नहीं सोचता कि पहले मैंने क्या कहा था। किसी विषयपर पहले जो कुछ मैं कह चुका हूँ, उससे संगत होना मेरा उद्देश्य नहीं है, बल्कि प्रस्तुत अवसरपर मुझे जो सत्य मालूम पड़े उसके अनुसार करना मेरा उद्देश्य है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मैं सत्यकी ओर निरन्तर बढ़ता ही गया हूँ। अपनी यादवाश्तको मैंने व्यर्थके बोझसे बचा लिया है और इससे भी बढ़कर बात यह है कि जब कभी मुझे अपने पचास वर्ष पहलेतकके लेखोंकी तुलना करनी पड़ी है, तो अपने ताजासे ताजा लेखोंसे उन दोनोंमें मुझे कोई असंगति नहीं मिली है। फिर जो मित्र उनमें असंगति देखते हैं, उनके लिये अच्छा यह होगा कि जबतक पुरानेसे ही उन्हें कोई खास प्रेम न हो, वे उसी अर्थको ग्रहण करें, जो मेरे सबसे ताजा लेखोंसे निकलता हो। लेकिन चुनाव करनेसे पहले उन्हें यह देखनेकी कोशिश करनी चाहिये कि ऊपरसे दिखायी देनेवाली असंगतियोंके बीच क्या एक मूलभूत स्थायी संगति नहीं है?

जहाँतक मेरी अगम्यताका सवाल है, मित्रोंको यह विश्वास रखना चाहिए कि अपने विचार संबद्ध होनेपर उन्हें दबानेका प्रयत्न मैं कभी नहीं करता। अगम्यता कभी कभी तो संक्षेपमें कहनेकी मेरी इच्छाके कारण होती है, और कभी-कभी जिस विषयपर मुझसे राय देनेके लिए कहा जाये उसके सम्बन्धके मेरे अपने अज्ञानके कारण भी होती है।

नमूनेके तौर पर इसका एक उदाहरण दूँ। एक मित्र, जिनके और मेरे बीच दुरावकी बात कभी नहीं रही रोषके बजाय क्षोभसे लिखते हैं—

"भारतके युद्धकी अभिनय-स्थली होनेपर जो कुछ अघटनीय घटना नहीं है, क्या

गान्धीजी अपने देशवासियोंको यह सलाह देनेको तैयार है कि शत्रुकी तलवारके सामने वे सीने खोल दें ? कुछ समय पहले, वह जो कुछ कहते उसके लिये मै अपनेको वचन-बद्ध कर लेता, लेकिन अब और अधिक विश्वास मुझे नहीं रहा है ।"

मैं उन्हें विश्वास दिला सकता हूँ कि, अपने हालके लेखोंके बावजूद वह मुझमें इतना विश्वास रख सकते हैं कि अब भी मैं वही सलाह दूँगा जैसी कि वह आशा करते हैं कि मैंने पहले दी होती या जैसी मैंने चेकों या एबिसीनियनोंको दी है। मेरी अहिंसा सख्त चीजकी बनी हुई है। वैज्ञानिकोंको सबसे मजबूत जिस धातुका पता होगा उससे भी यह ज्यादा मजबूत है। इतनेपर भी मुझे खेदपूर्वक इस बातका ज्ञान है कि इसे अभी इसकी असली ताकत प्राप्त नहीं हुई है। अगर यह प्राप्त हो गयी होती, तो संसारमें हिंसाकी जिन अनेक घटनाओंको मैं असहाय रूपमें रोज देखा करता हूँ उनसे निपटनेका रास्ता भगवान मुझे सुझा देता। यह मैं धृष्टतापूर्वक नहीं बल्कि पूर्ण अहिंसाकी शक्तिका कुछ ज्ञान होनेके कारण कह रहा हूँ। अपनी सीमितता या कम-जोरीको छिपानेके लिये मैं अहिंसाकी शक्तिको हलका नहीं आँकने दूँगा। अब पूर्वोक्त प्रश्नोंके जवाबमें कुछ पंक्तियाँ लिखता हूँ—

(१) व्यक्तिगत रूपसे मुझपर तो युद्धकी जो वहशत सवार हुई है वैसी पहले कभी नहीं हुई थी। आज मैं जितना दिलगीर हूँ उतना पहले कभी नहीं हुआ। लेकिन इससे भी बड़े खौफका कारण आज मैं वैसी स्वेच्छापूर्ण भर्ती करनेवाला सार्जेन्ट नहीं बनूँगा जैसा पिछले महायुद्ध के वक्त मैं बन गया था। इतने पर भी यह अजीबसा मालूम पड़ेगा कि मेरी सहानुभूति मित्र-राष्ट्रोंके ही साथ है। जो भी हो, यह युद्ध पश्चिममें विकसित प्रजातंत्र और हर हिटलर जिसके प्रतीक हैं उस निरंकुशताके बीच होनेवाले युद्धका रुप धारण कर रहा है। रूस इसमें जो हिस्सा ले रहा है, वह यद्यपि दुःखद है, फिर भी हमें उम्मीद करनी चाहिये कि इस अस्वाभाविक मेलसे, चाहे अनजाने ही क्यों न हो, एक ऐसा सुखद घोल पैदा होगा जो क्या शक्ल इख्तियार करेगा यह पहलेसे कोई नहीं कह सकता। अगर मित्र राष्ट्रों-का उत्साह भंग न हो, जिसका जरा भी कोई आसार नहीं है, तो इस युद्धसे सब युद्धोंका अन्त हो सकता है—ऐसे भीषण रूपमें तो जरूर ही जैसे कि हम आज देख रहे हैं। मुझे उम्मीद है कि भारत, यद्यपि अपने आन्तरिक भेद-भावोंसे छिन्न-भिन्न हो रहा है, तथापि इस इच्छित उद्देश्यकी पूर्ति तथा अबतककी अपेक्षा शुद्ध प्रजातंत्रके प्रसारमें प्रभावकारक भाग लेगा। निसन्देह, यह इस बातपर निर्भर है कि संसारके रंगमंचपर जो सच्चा दुखद नाटक हो रहा है उसमें वर्किंग कमेटी अन्ततोगत्वा कैसा भाग लेगी। इस नाटकमें हम अभिनेता और दर्शक दोनों ही हैं। मेरा मार्ग तो निश्चित है। चाहे मैं वर्किंग कमेटीके विनम्र मार्ग-दर्शकका काम करूं, या, अगर इसी बातको बिना किसी आपत्तिके मैं कह सकूँ तो कहूँगा कि, सरकारके—मेरा मार्ग प्रदर्शन उनमेंसे एकको या दोनोंको अहिंसाके मार्गपर ले जाना होगा, चाहे वह प्रगति सदा अगोचर ही क्यों न रहे। यह स्पष्ट है कि मैं किसी रास्तेपर किसीको जबरदस्ती नहीं चला सकता, मैं तो सिर्फ उसी शक्तिका उपयोगकर सकता हूँ, जो इस अवसरके लिये ईश्वर मेरे हृदय व मस्तिष्कमें देने की कृपा करें।

(२) मैं समझता हूँ कि इस प्रश्नका जवाब पहले प्रश्नके जवाबमें आ गया है।

(३) अहिंसाकी ही भांति हिंसाके भी दर्जे होते हैं। वर्किंग कमेटी इच्छापूर्वक अहिंसाकी नीतिसे नहीं हटी है। सच तो यह है कि वह ईमानदारीके साथ अहिंसाके वास्तविक फलितार्थोंको स्वीकार नहीं कर सकती। उसे लगा कि बहुसंख्यक कांग्रेसजनोंने स्पष्ट रूपसे कभी भी नहीं समझा कि बाहरसे आक्रमण होनेपर वे अहिंसात्मक साधनोंसे देशकी रक्षा करेंगे। सच्चे अर्थोंमें तो उन्होंने सिर्फ यही समझा है कि ब्रिटिश सरकारके खिलाफ कुल मिलाकर अहिंसाके जरिये वे सफल लड़ाई लड़ सकते हैं। अन्य क्षेत्रोंमें कांग्रेसजनोंको अहिंसाके उपयोगकी ऐसी शिक्षा मिली भी नहीं है। उदाहरणके तौरपर साम्प्रदायिक दंगों या गुण्डेपनका अहिंसात्मक रूपसे सफल मुकाबिला करनेका निश्चित तरीका उन्होंने अभी नहीं खोज पाया है। यह दलील अकाट्य है, क्योंकि वास्तविक अनुभव पर इसका आधार है। अगर इसलिये अपने सर्वोत्तम साथियोंका मैं साथ छोड़ दूँ कि अहिंसाके विस्तृत उपयोगमें वे मेरा अनुसरण नहीं कर सकते, तो मैं अहिंसाका उद्देश्य नहीं साधूँगा। इसलिये इस विश्वासके साथ मैं उनके साथ ही रहा कि अहिंसात्मक साधनसे उनका हटना बिल्कुल संकीर्ण क्षेत्रतक ही सीमित रहेगा और वह अस्थायी ही होगा।

(४) मेरे पास कोई खास योजना तैयार नहीं है, क्योंकि मेरे लिये भी यह नया ही क्षेत्र है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि साधनोंका मुझे चुनाव नहीं करना है, चाहे मैं वर्किंग कमेटीमें सहयोग करूँ या वाइसरायके साथ, वह साधन सदा शुद्ध अहिंसात्मक ही होने चाहिये। इसलिये जो मैं कर रहा हूँ, वह खुद ही ठोस योजनाका अंग है। और बातें मुझे दिन-ब-दिन सूझती जायंगी। जैसे कि मेरी सब योजनाओंके बारेमें हमेशा हुआ है। असहयोगका प्रसिद्ध प्रस्ताव भी मेरे दिमागमें कांग्रेस महासमितिकी उस बैठकमें जो १९२० में कलकत्तेमें हुई थी और जिसमें वह प्रस्ताव पास हुआ, कोई २४ घंटे से भी कम समयमें आया, और असली रूपमें यही हाल डांडी-कूचका रहा। पहले सविनय भंगकी नींव भी, जिसे उस वक्त निष्क्रिय प्रतिरोधका नाम दिया गया, प्रसंग-वश, भारतीयोंकी उस सभामें पड़ी, जो इन दिनोंके एशियाई-विरोधी कानूनका मुकाबिला करनेके उपाय खोजनेके उद्देश्यसे १९०६में जोहान्सबर्गमें हुई थी। सभा में जब मैं गया तो उस प्रस्तावकी पहलेसे मुझे कोई कल्पना नहीं थी। वह तो उस सभामें ही सूझा। इस सृजन शक्तिका अभी भी विकास हो रहा है, लेकिन फर्ज कीजिये कि ईश्वरने मुझे पूरी शक्ति प्रदान की है (जैसे कि वह कभी नहीं करता) तो मैं फौरन अंग्रेजसे कहूँगा कि वे शस्त्र रख दें, अपने सब अधीन देशोंको आजाद कर दें 'छोटे इंगलैण्डवासी' कहानेमें ही गर्वानुभव करें और संसारके सब निरंकुशतावादियोंके बुरे से बुरा करनेपर भी उनके आगे सिर न झुकायें। तब अंग्रेज बिना प्रतिरोधके मरकर इतिहासमें अहिंसात्मक वीरोंके रूपमें अमर हो जायंगे। इसके अलावा, भारतीयोंको भी मैं इस दैवी शहादतमें सहयोग करनेके लिये निमंत्रित करूँगा। यह कभी भी न टूटनेवाली साझेदारी होगी जो तथाकथित शत्रुओंमें नहीं बल्कि उनके अपने शरीरोंके खूनसे लिखे अक्षरोंमें अंकित हो जायगी। लेकिन मेरे पास ऐसी सामान्य सत्ता नहीं है। अहिंसा तो धीमी प्रगतिका पौदा है, वह अदृश्य परन्तु निश्चित रूपमें बढ़ता है और इस खतरेको लेकर कि मेरे बारेमें भी गलत-फहमी होगी, मुझे उस 'और' भी क्षीण आवाजके अनुसार ही काम करना चाहिये।

हरिजन सेवक
३० सितम्बर, १९३९

अहिंसाकी अद्भुत शक्ति

एक पठान दोस्त जो मुझे प्रवासमें मिले, हिंसक कार्योंके बारेमें बातचीत करते हुवे बोले–

"हमारी सरकार इतनी मजबूत है कि हमारे किसी भी हिंसक कार्यको चाहे कितना ही संगठित क्यों न हो, बड़ी आसानीसे दबा सकती है। मगर आपकी अहिंसा तो अजेय है। आपने हमारे देशको एक अजीब हथियार दिया है। दुनियांमें ऐसी एक भी सरकार नहीं जो अहिंसाको जेर कर सके।'

मेरे इस दोस्तने अहिंसाके बारेमें जो अद्वितीय विचार मेरे सामने रखा है उसके लिये मैंने उनकी तारीफ की। एक ही वाक्यमें उन्होंने अहिंसाके अनुपम सौन्दर्यको रख दिया। हिन्दुस्तान इसकी स्वाभाविकता और अनायासपूर्ण रीतिसे इसके सब फलितार्थोंको अगर समझ भर सके। तो वह बड़े-से-बड़े हमलावरोंके मुकाबलेमें अजेय रह सकता है। अहिंसाकी शिक्षा पाये हुए लोगोंपर हमला हो ही नहीं सकता। अर्थात् सबसे कमजोर राज्य भी अगर अहिंसाकी कलाको सीख जाय, तो वह अपनेको हमलेसे बचा सकता है। लेकिन एक छोटा-सा राज्य चाहे वह शस्त्रोंसे कितना ही सुसज्जित क्यों न हो, अच्छे अस्त्र-शस्त्रधारी राष्ट्रोंके गुटके बीच अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता। उसे अपनेको या तो मिटा देना पड़ता है नहीं तो ऐसे गुटमेंसे किसी एक राष्ट्रके संरक्षणमें रहना भी पड़ता है। जैसा कि प्यारेलालने मेरे सीमाप्रान्तके प्रवासमें लिखा है। बादशाह खानका कहना है–

"अगर हम अहिंसाका सबक न सीखते, तो हमारी बड़ी दुर्गति होती। हमने तो उसे अपने पूरे स्वार्थसे अपनाया है। हम तो जन्मसे ही लड़ाके हैं और हम इस रिवाजको आपसमें ही लड़कर जारी रखते आये हैं। एक दफा एक कुनबेमें या कबीलेमें एक बार खून हुआ कि उसका बदला लेना एक इज्जतकी बात समझी जाती है। आमतौरपर हम लोगोंमें मुआफी जैसी कोई चीज पायी ही नहीं जाती है। और इसलिये वहां सिर्फ बदलेमें हिंसा, प्रतिहिंसा और प्रतिहिंसा ही है। इस तरह यह विनाशचक्र कभी खत्म ही नहीं होता। इसमें शक नहीं कि अहिंसा बतौर मुक्तिके हमारे पास आयी है।"

सरहद प्रान्तके लिए जो कुछ सही है वह हम सब लोगोंके लिए भी सही है। अनजानमें हम उस हिंसाके विनाशचक्रमें घूमते रहते हैं। थोड़ा सा विचार, विवेक और अनुभव इस चक्करमेंसे हमें निकाल सकते हैं।

हरिजन सेवक
७ अक्तूबर, १९३९

कसौटीपर

कार्यसमितिके सदस्योंके साथ चर्चा करते हुए मैंने देखा कि अहिंसा-शस्त्रसे ब्रिटिश सरकारके खिलाफ लड़नेके आगे, उनकी अहिंसा कभी नहीं गयी। मैंने इस विश्वासको दिलमें जगह दे रक्खी थी कि संसारकी साम्राज्यवादकी सबसे बड़ी सत्ताके साथ लड़नेमें गत बीस बरसके अहिंसाके तर्कपूर्ण परिणामको कॉंग्रेस-जनोंने पहचान लिया है। लेकिन अहिंसाके जैसे बड़े-बड़े प्रयोगोंमें कल्पित प्रश्नोंके लिए मुश्किलसे ही कोई गुंजाइश होती है। ऐसे प्रश्नोंके उत्तरमें मैं खुद कहा करता था कि जब हम वस्तुतः स्वतंत्रता हासिल कर लेंगे तभी हमें यह मालूम होगा कि हम अपनी रक्षा अहिंसात्मक तरीकेसे कर सकते हैं या नहीं। लेकिन आज यह प्रश्न कल्पित नहीं है। ब्रिटिश सरकार हमारे मुआफिक कोई घोषणा करे या न करे, कॉंग्रेसको ऐसे किसी रास्तेका निर्णय करना ही पड़ेगा, जिसे कि वह भारतपर आक्रमण होनेकी हालतमें अख्तियार करेगी। हालाँकि सरकार-के साथ कोई समझौता न हो,तब भी कॉंग्रेसको अपनी नीति घोषित करनी ही होगी और उसे यह बतलाना पड़ेगा कि आक्रमण करनेवाले गिरोहका मुकाबला वह हिंसात्मक साधनोंसे करेगा या अहिंसात्मक।

जहाँतक कि मैं कार्यसमितिके सदस्योंकी मनोवृत्तिको, सारी पूरी चर्चाके बाद, समझ सका हूँ, उसके सदस्योंका ख्याल है कि अहिंसात्मक साधनोंके जरिये सशस्त्र आक्रमणसे देशकी रक्षा करनेके लिये वे तैयार नहीं हैं।

यह दुःखद प्रसंग है। निश्चय ही अपने घरसे शत्रुको निकाल बाहर करनेके लिये जो उपाय अख्तियार किये जाते हैं, उन उपायोंसे जो कि, उसे (शत्रुको) घरसे बाहर रखनेके लिये अख्तियार किये जायँ—न्यूनाधिक रूपमें मिलते जुलते होने ही चाहिएँ। यह पिछला (रक्षाका) उपाय ज्यादा आसान होना चाहिये। बहरहाल, हकीकत यह है कि हमारी लड़ाई बलवानकी अहिंसात्मक लड़ाई नहीं रही है। यह तो दुर्बलके निष्क्रिय प्रतिरोधकी लड़ाई रही है। यही वजह है कि इस महत्वके क्षणमें हमारे दिलोंसे अहिंसाकी शक्तिमें ज्वलंत श्रद्धाका कोई स्वेच्छा-पूर्ण उत्तर नहीं मिला। इसलिए कार्य-समितिने यह बुद्धिमानीकी ही बात कही है कि वह इस तर्क-पूर्ण कदम उठानेके लिये तैयार नहीं है। इस स्थितिमें दुःखकी बात यह है कि कॉंग्रेस अगर उन लोगोंके साथ शरीक हो जाती है, जो भारतकी सशस्त्र रक्षाकी आवश्यकतामें विश्वास करते हैं, तो इसका यह अर्थ हुआ कि गत बीस वर्ष योंही चले गये, कॉंग्रेसवादियोंने निःशस्त्र युद्ध विज्ञान सीखनेके प्राथमिक कर्त्तव्यके प्रति भारी उपेक्षा दिखायी और मुझे भय है कि इतिहास मुझे ही, लड़ाईके सेनापतिके रूपमें दुःखजनक बातके लिये जिम्मेवार ठहरायेगा। भविष्यका इतिहास कहेगा कि यह तो मुझे पहले ही देख लेना चाहिये था कि राष्ट्र बलवानकी अहिंसा नहीं बल्कि केवल निर्बलका अहिंसात्मक निष्क्रिय प्रतिरोध सीख रहा है, और इसलिये, इतिहासकारके कथनानुसार, कॉंग्रेसजनोंके लिए सैनिक शिक्षा मुझे मुहैया कर देनी चाहिए थी।

इस विचारको रखते हुये कि किसी न किसी तरह भारत सच्ची अहिंसा सीख लेगा, मुझे यह नहीं हुआ कि निःशस्त्र रक्षाके लिये अपने सहकर्मियोंसे ऐसी शिक्षा लेनेको कहूँ। इसके विपरीत, मैं तो तलवारकी सारी कलाको और मजबूत लाठियोंके प्रदर्शनको अनुत्साहित ही करता रहा और गतके लिये मुझे आज भी पश्चाताप नहीं है। मेरी आज भी वही ज्वलंत श्रद्धा है कि संसारके समस्त देशोंमें भारत ही एक ऐसा देश है जो अहिंसाकी कला सीख सकता है, और अब भी वह इस कसौटीपर कसा जाय, तो संभवतः ऐसे हजारों स्त्री-पुरुष मिल जायँगे, जो अपने उत्पीड़कोंके प्रति बगैर कोई द्वेष भाव रक्खे खुशीसे मरनेके लिए तैयार हो जायँगे। मैंने हजारोंकी उपस्थितिमें बार-बार जोर देकर कहा है कि बहुत संभव है कि उन्हें ज्यादा से ज्यादा तकलीफें झेलनी पड़ें। यहां तक कि गोलियोंकाभी शिकार होना पड़े। नमक-सत्याग्रहके दिनोंमें क्या हजारों पुरुषों और स्त्रियोंने किसी भी सेनाके सैनिकोंके ही समान बहादुरीके साथ तरह तरहकी मुसीबतें नहीं झेली थीं? हिन्दुस्तानमें जो सैनिक योग्यता अहिंसात्मक लड़ाईमें लोग दिखा चुके हैं उससे भिन्न प्रकारकी योग्यता किसी भी आक्रमणकारीसे लड़नेके खिलाफ आवश्यक नहीं है—सिर्फ उसका प्रयोग एक बृहत्तर पैमानेपर करना होगा।

एक चीज नहीं भूलनी चाहिये। निःशस्त्र भारतके लिए यह जरूरी नहीं कि उसे जहरीली गैसों या बमोंसे ध्वस्त होना पड़े। मेगनट लाइनने सिग्रफेडको जरूरी बना दिया है। मौजूदा परिस्थितियोंमें हिन्दुस्तानकी रक्षा इसलिए जरूरी हो गयी है कि वह आज ब्रिटेनका एक अंग है। स्वतंत्र भारतका कोई शत्रु नहीं हो सकता। यदि भारतवासी दृढ़तापूर्वक सिर न झुकानेकी कला सीख लें और उसपर पूरा अमल करने लगें, तो मैं यह कहनेकी जुरंत करूँगा कि हिन्दुस्तानपर कोई आक्रमण नहीं करना चाहेगा। हमारी अर्थनीति इस प्रकारकी होगी कि शोषकोंके लिए प्रलोभनकी कोई वस्तु नहीं होगी।

लेकिन कुछ कांग्रेसजन कहेंगे कि—

"ब्रिटिशकी बातको दरकिनार कर दिया जाय, तबभी हिन्दुस्तानमें उसके सीमान्तोंपर बहुत सी सैनिक जातियां रहती हे। वे मुल्ककी रक्षाके लिए, जो उनका भी उतना ही है जितना कि हमारा युद्ध करेंगी।"

यह बिलकुल सत्य है इसलिए इस क्षण में केवल कांग्रेसजनोंकी बात कर रहा हूँ। आक्रमणकी हालतमें वे क्या करेंगे? जबतक कि हम अपने सिद्धान्तपर मर मिटनेके लिए तैयार न हो जायेंगे, हम सारे हिन्दुस्तानको अपने मतका नहीं बना सकेंगे।

मुझे तो विरुद्ध रास्ता अपील करता है। सेनामें पहलेसे ही उत्तर हिन्दुस्तानके मुसलमानों, सिक्खों और गोरखोंकी बहुत बड़ी संख्या है। अगर दक्षिण और मध्यभारतके जनसाधारण कांग्रेसका सैनिकीकरण कर देना चाहते है, जो उनका प्रतिनिधित्व करती है, तो उन्हें उनकी (मुसलमान, सिख वगैरहकी) प्रतिस्पर्धामें आना पड़ेगा। कांग्रेसको तब सेनाका एक भारी बजट बनानेमें भागीदार बनना पड़ेगा। यह सब चीजें कांग्रेसकी सहमति लिये बगैर सम्भवतः हो जांय। सारे संसारमें तब यह चर्चाका विषय बन जायगा कि कांग्रेस ऐसी

चीजमें शरीक है या नहीं। संसार तो आज हिन्दुस्तानसे कुछ नयी और अपूर्व चीज रखनेकी प्रतीक्षा में है। कांग्रेसने भी वही पुराना जीर्णशीर्ण कवच धारणकर लिया, जिसे कि संसार आज धारण किये हुये है, तो उसे उस भीड़-भड़क्कामें कोई नहीं पहचानेगा। कांग्रेसका नाम तो आज इसलिए है कि वह सर्वोत्तम राजनीतिक शस्त्रके रूपमें अहिंसाका प्रतिनिधित्व करती है। कांग्रेस मित्र-राष्ट्रोंको अगर इस रूपमें मदद देती है कि उसमें अहिंसाकी प्रतिनिधि करनेकी क्षमता है तो वह मित्र-राष्ट्रोंके उद्देश्यको एक ऐसी प्रतिष्ठा और शक्ति प्रदान करेगी, जो युद्धका अंतिम भाग्य निर्णय करनेमें अनमोल सिद्ध होगी किन्तु कार्यसमितिके सदस्योंने जो इस प्रकारकी अहिंसाका इजहार नहीं किया है, इसमें उन्होंने ईमानदारी और बहादुरी ही दिखायी है।

इसलिए मेरी स्थिति अकेले मुझतक ही सीमित है। मुझे अब यह देखना पड़ेगा कि इस एकान्त पथमें मेरे साथ कोई दूसरा सहयात्री है या नहीं। अगर मैं अपनेको बिलकुल अकेला पाता हूँ तो मुझे दूसरोंको अपने मतमें मिलानेका प्रयत्न करना ही चाहिये। अकेला होऊँ या अनेक साथ हों, मैं अपने विश्वासको अवश्य घोषित करूँगा कि हिन्दुस्तानके लिये यह बेहतर है कि वह अपने सीमान्तोंकी रक्षाके लिये भी हिंसात्मक साधनोंका सर्वथा परित्याग कर दे। शस्त्रीकरणकी दौड़में शामिल होना हिन्दुस्तानके लिये अपना आत्मघात करना है। भारत अगर अहिंसाको गवाँ देता है तो संसारकी अन्तिम आशापर पानी फिर जाता है। जिस सिद्धान्तका गत आधी सदीसे मैं दावा करता आ रहा हूँ उसपर मैं जरूर अमल करूँगा। और आखिरी साँसतक मैं यह आशा रक्खूँगा कि हिन्दुस्तान अहिंसाको एक दिन अपना जीवन सिद्धान्त बनायेगा, मानव जातिके गौरवकी रक्षा करेगा और जिस स्थितिसे मनुष्यने अपनेको ऊँचा उठाया, ख्याल किया जाता है, उसमें लौटनेसे उसे रोकेगा।

हरिजन सेवक
१४ अक्तूबर, १९३९

❀

"जीवन को मृत्यु की शय्या समझकर चलें। इस मौतके बिछौने में अकेले न सोयें। हमेशा यमदूतको साथ लेकर सोयें। मृत्यु (वेदना) से कहें कि अगर तू मुझे ले जाना चाहता है तो ले जा; मैं तो तेरे मुंह में नाच रहा हूँ। जब तक नाचने देगा, नाचूंगा, नहीं तो तेरी ही गोद में सो जाऊँगा।"

—गांधीजी

हिन्दू-मुस्लिम दंगे

अगर कोई इस बातका सबूत चाहे कि कांग्रेसकी अहिंसा सचमुच स्थगित या निष्क्रिय हिंसा थी, तो इसका सबूत हिन्दू-मुसलिम दंगोंमें प्रदर्शित प्रभावकारी हालांकि बिलकुल अनुशासनहीन हिंसाके रूपमें दिया जा सकता है। यदि खिलाफत आन्दोलनमें भाग लेनेवाले हजारों हिन्दू-मुसलमान सच्चे दिलसे अहिंसक होते तो वे आज एक दूसरेके प्रति इतने हिंसापूर्ण न होते, जितने कि आजकल वे लगातार पाये जाते हैं। और यह भी कहा जा सकता है कि इन दंगोंमें भाग लेनेवाले सबको गैर-कांग्रेसी करार दे दिया जाये, तो कांग्रेसको आम जनताकी संस्था कहना छोड़ देना पड़ेगा। क्योंकि दंगोंमें भाग लेनेवाले हिन्दू और मुसलमान आम जनतामेंसे ही निकलते हैं। फिर इसके अलावा हम कांग्रेसी सभाओंमें यह भी देखते हैं कि प्रतिस्पर्धी कांग्रेसी एक दूसरेके विरुद्ध भी हिंसापर उतर आते हैं। कांग्रेसके चुनावोंमें दिखाया जानेवाला अनुशासनभंग और फरेब ही इस बातका प्रमाण है कि कांग्रेसमें भी हिंसा मौजूद है। इसलिए यह कहना कि कौन कांग्रेसी—यदि कोई है—अहिंसक है, कठिन है। यदि अहिंसक कांग्रेसी अधिक संख्यामें होते और यदि हिन्दू मुस्लिम दंगोंमें प्रभावकारी भाग लिया होता तो वे इन दोनोंको बन्द कर सकते थे या कमसे कम इन्हें बन्द करनेकी कोशिशमें अपनी जान दे सकते थे। यदि ज्यादातर कांग्रेसी सच्चे अहिंसक होते तो मुसलमान भी यह मानते कि कांग्रेसियों पर मुस्लिम विरोधी होनेका दोष नहीं लाया जा सकता। कांग्रेसियोंके लिए इतना ही कहना काफी नहीं है कि उनका रुख बिलकुल निर्दोष है। मैं भले ही कानूनी तौरपर खरा उतर आऊँ लेकिन अगर हिंसाकी तराजूपर मेरे कामोंको तौला जाय तो वे भी बुरी तरह असफल सिद्ध हो सकेंगे। लेकिन अहिंसा तो शूरवीरों तथा दृढ़ लोगोंकी ही अहिंसा होनी चाहिये। अहिंसाकी भावना आंतरिक श्रद्धासे उत्पन्न होनी चाहिये इसलिए मैंने यह कहनेमें कभी भी संकोच नहीं किया कि यदि हमारे हृदयोंमें हिंसा है तो अपनी नपुंसकता छिपानेके लिए अहिंसाकी चोला पहननेकी अपेक्षा हिंसात्मक रहना ही अच्छा है। नपुंसकताकी अपेक्षा हिंसा ही हमेशा अच्छी है। एक हिंसकसे कभी भी अहिंसक होनेकी उम्मीद की जा सकती है, लेकिन नपुंसकसे कभी ऐसी आशा नहीं की जा सकती है।

हरिजन सेवक
२१ अक्तूबर, १९३९

किन कारणोंसे ?

किसी काममें असफल होनेका सबसे अच्छा तरीका यह है कि अपने विरोधीको खूब गालियां दी जायें, और उसकी कमजोरीसे फायदा उठाया जाये। लड़ाईके दूसरे प्रकारोंके बारेमें सत्य चाहे जो हो, पर सत्याग्रहमें तो यह माना गया है कि असफलताके कारणोंको खुद अपने ही अन्दर ढूंढना चाहिए। ब्रिटिश सरकारने कांग्रेसकी इस आशापर कि, सरकार कोई अपेक्षित घोषणा करेगी, जो पानी फेर दिया है उसका एकमात्र कारण वे कमजोरियां ही हैं, जो कांग्रेसके संघटन और कांग्रेसजनोंमें आ गयी हैं।

सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि अहिंसा और उसके अनेक फलितार्थोंकी हमने पूरी कद्र नहीं की। इसी एक महान दोषसे हमारी दूसरी सब कमजोरियां पैदा हुई हैं। हमने कायिक अहिंसाका तो खासा अच्छा पालन किया है, पर अपने दिलोंमें हमने हिंसाको आश्रय दे रक्खा है। इसलिए सरकारके मुकाबलेमें हमारी अहिंसा, हमारी सक्रिय हिंसाकी अयोग्यताका परिणाम है। यही वजह है कि हम अपने आपसके बर्तावमें हिंसाकी तरफ बहक गये हैं। कमेटियोंमें हम एक-दूसरेके साथ लड़ते-झगड़ते और कभी-कभी तो घूंसेबाजी तकपर उतर आते हैं। वर्किंग कमेटीके आदेशोंको अमलमें लानेसे हमने इन्कार कर दिया है। प्रतिस्पर्धी दल हमने अलग बना लिये हैं, जो सत्ताको छीनना चाहते हैं। हिंदू और मुसलमान जरा-जरासे एतराजपर लड़ बैठते हैं। साम्प्रदायिक मतभेद जो दूर नहीं हो सके हैं, इसके लिए कांग्रेसजन आंशिक रूपसे जरूर जिम्मेदार हैं। यह सब ठीक है कि हम अपनी फूटके लिए ब्रिटिश सरकारको दोषी ठहराते हैं। पर इस तरह हम अपनी वेदनाको बढ़ाते ही हैं। यह हमें मालूम था कि फूट डालकर राज करनेकी नीति १९२०में भी थी, और तब भी हमने हिन्दू-मुसलिम ऐक्यको अपने रचनात्मक कार्यक्रममें रक्खा था। हमने ऐसा इसलिए किया था कि हमें यह आशा थी कि हमारे रास्तेमें सरकार द्वारा रोड़े अटकाये जानेके बावजूद हम कौमी एकता हासिल कर लेंगे। अधिक क्या कहें, उस वक्त प्रतीत भी ऐसा होता था कि उस एकताको हमने हासिल कर लिया है।

हमारी कमजोरियोंके ये उदाहरण भयंकर हैं। कांग्रेसको अपनी पूरी उन्नतिपर पहुंचनेमें इन्होंने बाधा डाली है, और हमारी अहिंसाकी प्रतिज्ञाओंको मजाक बना दिया है। हमारी असफलताके कारणोंका यदि मेरा विश्लेषण सही है, तो यह तसल्लीदेह बात है कि इसका इलाज किसी बाहरी परिस्थितिका नहीं, किन्तु खुद हमारे ऊपर निर्भर करता है। हमें अपना खुदका संघटन इतना सुव्यवस्थित और इतना शुद्ध और शक्तिशाली बना लेना चाहिए कि जो हमारे लक्ष्यकी ओर बढ़नेमें बाधा डालते हैं वे हमें सम्मानसे देखने लगें; यह सम्मान हम उनमें डर पैदा करके नहीं, बल्कि उन्हें अपनी अहिंसात्मक वाणी और क्रियाका असंदिग्ध प्रमाण देकर ही प्राप्त कर सकते हैं।

वर्किंग कमेटीका प्रस्ताव जहां इस बातका सबूत है कि कांग्रेस हिन्दुस्तानकी स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिए सच्चाईके साथ प्रयत्न कर रही है, वहां यह कांग्रेसजनोंके अनुशासन और उनकी अहिंसा

की भी कसौटी है। हालाँकि प्रस्तावमें कोई ऐसी बात नहीं कही गई है, मगर कमेटीके इच्छानुसार सविनय-भंगके नियंत्रण तथा आयोजनका काम मेरे ऊपर छोड़ दिया गया है। यह कहनेकी कोई भी जरूरत नहीं कि मेरे पास इसके सिवा कोई बल नहीं, न कभी था, कि रजिस्टरमें दर्ज और गैरदर्ज कांग्रेसजनोंका विशाल समूह कमेटी द्वारा, या जब 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' निकलते थे तब उसके द्वारा और अब 'हरिजन' और 'हरिजन-सेवक' द्वारा जारी की गयी हिदायतोंपर जानबूझकर और स्वेच्छापूर्वक अमल करे। इसलिए जब मुझे मालूम हो कि मेरी हिदायतोंपर कोई अमल नहीं होता, तो कांग्रेसजन देखेंगे कि मैं चुपचाप मैदानसे हट जाऊँगा।

लेकिन अगर लड़ाईका आम नियंत्रण मेरे हाथमें रहता तो, मैं चाहूँगा कि अनुशासनका पूरी कड़ाईसे पालन हो। जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, जबतक कांग्रेसजन अहिंसा और सत्यपर पहिलेसे ज्यादा ध्यान न देंगे और पूर्ण अनुशासन न दिखायेंगे तबतक किसी बड़े पैमानेपर सविनय-भंगकी कोई भी संभावना नहीं है और जबतक अधिकारियों द्वारा हम इसके लिए बाध्य न किये जायें, उसकी कोई जरूरत भी नहीं पड़ेगी।

हम जीवन-मरणके युद्धमें प्रवृत्त हैं। हिंसाका वातावरण हमारे आसपास छाया हुआ है। देशके लिए यह भारी कसौटीकी घड़ी है। घपलेबाजीसे काम नहीं चलेगा। अगर कांग्रेसजनोंको ऐसा लगे कि उनमें अहिंसा नहीं है, अगर वे अंग्रेज अधिकारियोंके प्रति या कांग्रेसकी मुखालिफत करनेवाले अपने देशवासियोंके प्रति अपनी कटुताको दूर न कर सकें, तो उन्हें खुलेआम यह कह देना चाहिए, और अहिंसाका परित्याग कर मौजूदा वर्किंग कमेटीको बदल देना चाहिए। इससे कोई नुकसान न होगा। लेकिन कमेटी और उसकी हिदायतोंमें विश्वास न रखते हुए उसे कायम रखनेसे बहुत बड़ी हानि होगी। जहाँतक मैं देख सकता हूँ, सत्य और अहिंसाका कड़ाईके साथ पालन किये बगैर हिन्दुस्तानको स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। अगर मेरी सेना ऐसी हो कि जिन शस्त्रोंसे मैं उसे सुसज्जित करूँ, उनकी क्षमतामें उसे सन्देह हो, तो मेरे सेनापतित्वसे कोई लाभ न होगा। अपने देशके शोषणका मैं वैसा ही पक्का दुश्मन हूँ जैसा कि कोई हो सकता है। विदेशी जुएसे अपने देशको पूर्ण मुक्त करनेके लिए भी मैं उतना ही अधीर हूँ जितना कि कोई गरम से गरम कांग्रेसवादी हो सकता है। लेकिन एक भी अंग्रेज या भूमण्डलपर किसी भी मानवप्राणीसे मुझे घृणा नहीं है। मित्रराष्ट्रोंकी अगर मैं मदद नहीं कर सकता, तो उनका सर्वनाश भी मैं नहीं चाहता। कांग्रेसकी मेरी आशापर ब्रिटिश सरकारने बुरी तरह पानी फेर दिया है, मगर उनकी परेशानीसे मैं कोई फायदा नहीं उठाना चाहता।

मेरा प्रयत्न और मेरी प्रार्थना तो यही है और होगी, यथासाध्य कम से कम समयके अन्दर आपसमें लड़नेवाले राष्ट्रोंके बीच सम्मानपूर्ण सुलह हो जाय। मैंने यह आशा बाँध रखी थी कि ब्रिटेन और हिन्दुस्तानके बीच सम्मानपूर्ण सुलह और साझेदारी हो जायगी और जो भीषण रक्तपात मानवताको अपमानितकर खुद जीवनको ही भाररूप बना रहा है उससे बचनेका रास्ता निकालनेमें शायद मैं अपना विनम्र भाग अदा कर सकूँगा। लेकिन ईश्वरकी इच्छा तो कुछ और ही थी।

हरिजन-सेवक
२४ अक्तूबर, १९३९

वही पार लगायेगा

"प्रिय बन्धु,

मेरा आपसे परिचय नहीं है, पर जब सन् १९३१में आप डार्वेन (लंकाशायर) आये थे, उस समय मेरी पत्नी और मैं आपको अपना मेहमान बनानेवाले थे। पर उससे कुछही पहले हमको बर्लिन चले आना पड़ा। वहाँ हमने पिछले महायुद्धके बाद भूखों मरते बच्चोंमें कष्ट-निवारणका काम किया था। इस बार भी हम ५॥ वर्ष जर्मनीमें रहे। इससे हमें वहाँके ताजे हालातका खासा ज्ञान है। हमें वहाँके बहुतसे लोगोंके साथ प्रेम भी हो गया है।

इस लड़ाईके शुरूमें 'हरिजन'में आपकी कुछ पंक्तियाँ पढ़कर मुझे बड़ी दिलचस्पी पैदा हुई और प्रेरणा मिली। आपने लिखा था कि, 'अगर हिंसासे मेरे देशकी आजादी मिलती हो तो भी मैं उस कीमतपर उसे नहीं लूंगा। मेरा यह अटल विश्वास है कि तलवारसे ली हुई चीज उसी तरह चली भी जाती है।' मेरे मित्र अंगाथा हैरिसनने भी मुझे आपके कुछ लेख बताये। इनसे मुझे युद्धके बारेमें आपका रवैया समझनेमें मदद मिलती है। फिर भी मेरे मनपर चिन्ताका भार है। मैं वही आपके सामने रखना चाहता हूँ।

आजकल बहुतसे पक्के शान्ति-प्रेमियोंका भी यह हाल है कि जब कभी उनके देशोंकी स्वतंत्रता बुरी तरह छिनी जाती है तो वे खुद भले ही युद्धसे अलग रहें, मगर वे समझते हैं कि खोई हुई आजादीको वापस लेनेके लिए लड़ना अनिवार्य ही नहीं, उचित भी है। क्या ऐसे वक्तमें आप जैसे आध्यात्मिक नेता और ईश्वरीय दूतका यह फर्ज नहीं है कि आगे बढ़कर युद्धके पागलपनेके बजाय कोई दूसरा ऐसा रास्ता सुझायें जिससे आपसके झगड़े तो दूर हो ही सकें, बुराईका मुकाबला और राजनीतिक उद्देश्योंकी पूर्ति भी हो सके? मेरी समझमें नहीं आया कि जिस उत्तम मार्गके आप अगुआ हैं उसकी संसारके आगे घोषणा न करके आप युद्धसे पैदा हुई स्थितिसे भारतकी स्वतंत्रताके हकमें लाभ उठानेकी छोटी सी बात क्यों सोच रहे हैं! मुझे लगता है कि शायद मैं आपको समझनेमें गलती कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि परमात्मा आपके देशकी शुभाशाएँ पूरी करे, मगर यह साम्राज्य-वादी ब्रिटेनको हिंसात्मक युद्धमें मदद देकर किसी सौदेकी तरह पूरी न हों, बल्कि एक नया और पहलेसे अच्छा जगत-निर्माण करनेकी योजनाके सिलसिलेमें होनी चाहिए।

युद्धकी पीड़ा और निराशासे विदीर्ण होकर मेरा हृदय आपको पुकार रहा है। मेरी तरह संसारमें बहुत लोग ऐसे हैं जो इस बुराईमेंसे समय रहते मानव-जातिको मुक्त देखनेके लिए तरस रहे हैं। शायद आप ही ऐसे आदमी हैं, जो हमारी मदद कर सकते हैं। कृपया विचार कीजिए।

४९, पार्लियामेन्ट हिल
लंदन, एन० डब्ल्यू ३

आपका
कॉर्डर कैचपूल

यह लेखकके पत्रका सार है। मैं जानता हूँ कि इसमें जो रवैया प्रकट किया गया है वही अनेक अंग्रेजोंका है। वे कोई अच्छा रास्ता सुझानेके लिए मेरी तरफ देख रहे हैं। मेरे सत्तर साल पूरे होनेके उपलक्षमें सर राधाकृष्णन्ने जो अभिनन्दन-ग्रन्थ छपाया है उससे शान्तिके हजारों उपासकोंकी आशाएँ गहरी हो गयी हैं। मगर यह तो मैं ही जानता हूँ कि इन आशाओंकी पूर्तिके लिए मैं कितना कमजोर साधन हूँ। भक्तोंने मुझे जो श्रेय दिया है उसका मैं हकदार नहीं रहा हूँ। मैं अभी यह साबित नहीं कर सका हूँ कि हिन्दुस्तान बलवानोंकी अहिंसाका कोई बढ़िया उदाहरण दुनियाके सामने पेश करता है और न यह कि हमला करने वालोंके खिलाफ सशस्त्र युद्धके सिवाय कोई और भी कारगर उपाय हो सकता है। इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दुस्तानने तो यह दिखा दिया कि कमजोरोंके हथियारके रूपमें निष्क्रिय अहिंसा कामकी चीज है। यह भी सही है कि आतंकवादके बजाय अहिंसा उपयोगी है। मगर मैं यह दावा नहीं कर सकता कि यह कोई नयी या बड़ी बात है। इससे शान्तिके आन्दोलनको कुछ भी मदद नहीं मिलती।

मेरे पिछले लेखका पत्र-लेखकने जो हवाला दिया है उसमें और कांग्रेसकी माँगके साथ मेरे एकरस हो जानेमें विरोध दिखायी दे तो कोई अचरजकी बात नहीं है। मगर विरोध जैसी चीज असलमें है नहीं। उस वक्त क्या, मैं तो अब भी अहिंसाका बलिदान करके आजादी नहीं लूँ। आलोचक यह ताना दे सकता है कि ब्रिटिश सरकारसे जो घोषणा चाही जा सकती है वह कर दे तो आप मित्र राष्ट्रोंकी मदद करने लगेंगे और इस तरह हिंसाके भागीदार बन जायेंगे? यह ताना वाजिब होता, अगर बात यह न होती कि कांग्रेसकी सहायता तो शुद्ध नैतिक सहायता होगी। कांग्रेस न धन देगी, न जन। उसके नैतिक प्रभावका उपयोग भी शान्तिके लिए किया जायगा। मैं इस अखबारमें पहले ही कह चुका हूँ कि मेरी अहिंसा बचाव और हमला करनेवाली अलग अलग किस्मकी हिंसाओंको मानती है। यह सही है कि अन्तमें यह भेद मिट जाता है, मगर आरम्भमें तो उसका मूल्य है ही। मौका पड़ने पर अहिंसावादी व्यक्तिके लिए यह कहना धर्म हो जाता है कि न्याय किस तरफ है। इसलिए मैंने अबीसीनिया, स्पेन, चेकोस्लोवाकिया, चीन और पोलैंडके निवासियोंकी सफलता चाही थी, हालाँकि मैंने हर सूरतमें यह चाहा था कि वे लोग अहिंसात्मक मुकाबिला करते। मौजूदा मामलेमें अगर चेम्बरलेन साहबने जो ऊँची बातें कही हैं उनपर अमल करके ब्रिटेन अपना दावा कांग्रेसके सामने सच्चा साबित कर दे और हिन्दुस्तान आजाद घोषित कर दिया जाये, तो वह अपना सारा नैतिक प्रभाव शान्तिके पक्षमें खर्च कर देगा। मेरी रायमें जो हिस्सा मैं इस काममें ले रहा हूँ वह बिलकुल अहिंसात्मक है। कांग्रेसकी माँगके पीछे कोई सौदेकी भावना नहीं है। वह माँग है भी तो खालिस नैतिक। न सरकारको तंग करनेकी इच्छा है। सविनय-भंग भी जल्दीबाजीमें शुरू न होगा। इस बातकी सावधानी रखी जा रही है कि कांग्रेसकी माँग पर जो भी उचित आपत्ति हो उसका समाधान किया जाय और वांछित घोषणा करनेमें ब्रिटेनको जो भी कठिनाई मालूम हो उसे कम किया जाय। जो अधीर कांग्रेसी, अहिंसात्मक ही सही, लड़ाईके लिए छटपटा रहे हैं उनपर खूब जोर डाला जा रहा है। मैं खुद यह चाहता हूँ कि शान्ति-स्थापनके काममें मैं कारगर हिस्सा लेनेके योग्य हो जाऊँ। ऐसा मैं उसी हालतमें कर सकता हूँ, जब हिन्दुस्तान सचमुच ब्रिटेनका आजाद साथी बन जाय, भले ही कानूनी क्रियाएँ युद्ध खतम होनेके बाद होती रहें।

लेकिन मैं हूँ कौन ? जो ईश्वर मुझे देता है इसके अलावा मेरे पास कोई ताकत नहीं है। सिर्फ नैतिक प्रभावके अलावा मेरी देशवासियों पर भी कोई सत्ता नहीं है। इस समय संसार पर जिस भीषण हिंसाका साम्राज्य है उसकी जगह अहिंसा स्थापित करनेके लिए ईश्वर मुझे शुद्ध अस्त्र समझता होगा तो वह मुझे बल भी देगा और रास्ता भी दिखायेगा। मेरा बड़े-से-बड़ा हथियार तो मूक प्रार्थना है। इस तरह शान्ति-स्थापनका काम ईश्वरके समर्थ हाथोंमें है। उसके हुक्मके बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता। उसका हुक्म उसके कानूनकी शकलमें ही जारी होता है। वह कानून सदा वैसा ही रहता है, कभी बदलता नहीं। उसमें और उसके कानूनमें कोई भेद भी नहीं है। हम उसे और उसके कानूनको किसी आइनेकी मददसे पहचान सकते हैं और वह धुंधला-सा। पर उस कानूनकी जो हलकी-सी झलक दिखायी देती है वह मेरे अन्तरको आनन्द, आशा और भविष्यमें श्रद्धासे भर देनेके लिए काफी है।

हरिजन-सेवक
९ दिसम्बर, १९३९

❀

असली अहिंसा

डॉ. राममनोहर लोहिया लिखते हैं:—

"क्या आजादीकी प्रतिज्ञाका यह अर्थ है कि स्वतंत्र भारतके लिए ऐसी सामाजिक व्यवस्था में विश्वास रखा ही जाये जिसकी बुनियाद सिर्फ चर्खे और मौजूदा रचनात्मक कार्यक्रम पर होगी ? मुझे खुदको तो ऐसा लगता है कि ऐसी बात नहीं है। प्रतिज्ञामें चर्खा और गाँवोंकी दस्तकारियाँ शामिल हैं, मगर यह बात नहीं है कि प्रतिज्ञामें दूसरे उद्योगों और आर्थिक प्रवृत्तियोंकी गुंजाइश ही नहीं। इन उद्योगोंमें बिजली, जहाज बनाने, कलें तैयार करने आदिका नाम लिया जा सकता है। फिर भी यह सवाल रह जाता है कि जोर किस पर दिया जाय? इस बारेमें प्रतिज्ञासे सिर्फ इस हदतक फैसला होता है कि इतना विश्वास रखना तो जरूरी है कि चर्खा और ग्रामोद्योग भावी समाज-व्यवस्थाके ऐसे हिस्से होंगे जिन्हें अलग नहीं किया जा सकता और उनपरसे विश्वास हटाकर दूसरे उद्योगोंपर विश्वास नहीं रखा जा सकता।

"क्या प्रतिज्ञासे तुरंत यह जरूरी हो जाता है कि और सब कार्रवाई करना छोड़ दिया जाय और सिर्फ वही किया जाय जिसका आधार मौजूदा रचनात्मक कार्यक्रम पर हो ? मुझे तो ऐसा लगता है कि यह जरूरी नहीं। लगान, कर, व्याज, और जनताकी प्रगतिके रास्तेमें और भी जो आर्थिक रुकावटें हैं उनके विरुद्ध आन्दोलन करनेमें तो कोई बाधा नहीं दिखाई देती। मिसालके लिए यह नामुमकिन नहीं है कि जब आप सत्याग्रह शुरू करना पसन्द करें तब आप खुद ही लगानबन्दी और करबन्दीका आन्दोलन करनेका निश्चय करें। आप सचमुच ऐसा करें या न

करे, प्रतिज्ञाकी दृष्टिसे इसका इतना महत्त्व नहीं है जितना इस बात का कि आप कर सकते हैं। कुछ भी हो, आज तो आर्थिक ढंगके आन्दोलनकी छूट है।

"ये दोनों सवाल तो प्रतिज्ञाके इस पहलूसे पैदा होते हैं कि क्या-क्या नहीं किया जा सकता। एक तीसरा सवाल इस बारेमें खड़ा होता है कि क्या-क्या करना जरूरी है। बेशक यह आवश्यक है कि जो कोई प्रतिज्ञा ले उसे समाजकी अर्थ-व्यवस्था एक जगह केन्द्रित न करनेके उसूलमें अपना क्रियात्मक विश्वास जाहिर करनेको तैयार रहना चाहिए। इस विश्वासका असली रूप क्या हो यह भले ही काल-प्रवाहके साथ तय हो सकता है। प्रतिज्ञा लेनेवालेको सिर्फ चरखेके बारेमें इतना विश्वास होना चाहिए कि कपड़ेका उद्योग थोड़े लोगोंके हाथोंसे पूरी तरह निकालकर अधिक-से-अधिक लोगोंके हाथोंमें दिया जा सकता है, और इसके लिए कोशिश भी होनी चाहिए।

"मैंने आलस्य और दूसरे कारणोंसे होनेवाली व्यवहारकी अनियमिततााओंका बिलकुल जिक्र नहीं किया है। ऐसा तो सभी प्रतिज्ञाओं और श्रद्धाओंके बारेमें होता है। सिर्फ ऐसी गलतियोंको दूर करनेकी इच्छा जरूर होनी चाहिए।

"मैं नहीं जानता कि प्रतिज्ञाका यह अर्थ सही है या नहीं, ओर आपको स्वीकार हो सकता है या नहीं। मुझे यह भी पता नहीं कि मेरे समाजवादी साथियोंको यह पसन्द आयेगा या नहीं। शायद आपकी राय जल्दी मालूम होना देशके लिए अच्छा होगा। मगर पहले ही इतनी देर हो चुकी है कि स्वाधीनता-दिवसके लिए तो यह राय काम नहीं आ सकेगी।"

जो बात मैं कई बार कह चुका हूँ उसे दोहराने की जरूरत तो नहीं है, मगर वह बात यह है कि प्रतिज्ञाका कानूनी और अधिकारपूर्ण अर्थ तो कार्यसमिति ही बता सकती है। मेरे बताये हुए अर्थका महत्त्व तो वहीं तक है जहाँतक कि लोगोंको मान्य है।

संक्षेपमें मैं इतना कह सकता हूँ कि डॉक्टर लोहियाका लगाया हुआ अर्थ मंजूर कर लेनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। कांग्रेसकी कोशिशका अन्तमें कुछ भी परिणाम निकले, प्रतिज्ञाके बारेमें जो चर्चा हो रही है उससे जनताको अच्छी राजनीतिक शिक्षा मिल रही है। और देशमें अलग-अलग विचारके लोगोंकी राय स्पष्ट होती जा रही है।

हालाँकि मोटे तौर पर डॉक्टर लोहियासे मेरी राय मिलती है फिर भी यह अच्छा होगा कि प्रतिज्ञाका अपना अर्थ मैं अपनी ही भाषामें बता दूँ। प्रतिज्ञामें सारी बातें नहीं आ गयी। इससे तो यही मालूम होता है कि कार्यसमिति कहाँ तक मेरे साथ जा सकती थी। अगर देशका दृष्टिकोण मैं अपना-सा बना सका तो आयंदा समाज-व्यवस्थाकी बुनियाद ज्यादातर चरखे और उससे निकलनेवाले सारे फलितार्थोंपर खड़ी की जायेगी। उसमें वे सब चीजें शामिल होंगी जिनसे देहातियोंकी भलाई हो। लेखकने जिन उद्योगोंका जिक्र किया है जबतक वे देहातों और देहाती जीवनका गला न घोटने लगें तबतक उन उद्योगोंका स्थान भी रहेगा। मेरी कल्पनामें यह जरूर है कि देहातकी दस्तकारियोंके साथ-साथ बिजली, जहाज बनाना, कलें तैयार करना और इसी तरहके दूसरे उद्योग भी रहेंगे। मगर कौन मुख्य और कौन गौण रहें, इसका क्रम उलट जायगा। आजतक बड़े-बड़े कारखानोंकी योजना इस तरह बनती रही है जिससे गाँवों और

ग्रामोद्योगोंका नाश हुआ। आनेवाली शासन-व्यवस्थामें बड़े उद्योग गाँवों और उनकी कारीगरीके मातहत रहेंगे। मैं समाजवादियोंकी इस मान्यतासे सहमत नहीं हूँ कि जब बड़े कारखानों की योजना बनानेवाला और उसका मालिक, राष्ट्र हो जायगा तब जीवनके लिए जरूरी चीजें बड़े कारखानोंमें तैयार करनेसे आम लोगोंका भला होगा। हेतु तो पश्चिमी और पूर्वी दोनों तरह की कल्पनामें एक ही है, यानी यह कि सारे समाजको अधिक-से-अधिक सुख मिले और जिस घिनौने भेदभावके कारण एक तरफ करोड़ों नंगे-भूखे और दूसरी ओर मुट्ठीभर मालदार आदमी रहते हैं वह भेदभाव मिट जाय। मेरा विश्वास है कि यह उद्देश्य तभी सफल हो सकता है जब संसारके अच्छे और विचारशील लोग मान लें कि अहिंसाके आधार पर ही न्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था रची जा सकती है। मेरी रायमें गरीबोंके हाथमें हिंसा द्वारा सत्ता लानेकी कोशिश अंतमें पार नहीं पड़ेगी। जो चीज हिंसासे हासिलकी जाती है वह उससे बढ़कर हिंसाके सामने नहीं टिक सकती, और हाथसे निकल जाती है। अगर कांग्रेसवादी अपने अहिंसाके ध्येय पर सच्चे रहें और उसपर अमल करें तो भारतका उद्देश्य पूरा हुआ ही समझना चाहिए। इस सच्चाईकी परीक्षा है रचनात्मक कार्यक्रमको पूरा करना। जो लोग आम जनताके विचारोंको भड़काते हैं वे जनता और देश, दोनोंका नुकसान करते हैं। उनका हेतु ऊँचा होता है, इस बातसे यहाँ सरोकार नहीं। कांग्रेसवादी रचनात्मक कार्यक्रम पर पूरी तरह और सच्चाईके साथ अमल क्यों नहीं करना चाहते? जब सत्ता हमारे हाथमें आ जायगी, तब दूसरे कार्यक्रमोंपर विचार करनेका वक्त आयगा। मगर हम तो शेखचिल्ली ठहरे। दंतकथा है न-कि भैंस खरीदनेसे पहले ही उसके बँटवारेके बारेमें साझीदार झगड़ बैठे। इसी तरह स्वराज तो मिला नहीं और हम हैं कि अपने जुदा-जुदा कार्यक्रमोंके बारेमें बहस और झगड़े कर रहे हैं! सुशीलताका तकाजा है कि जब बहुमतने एक कार्यक्रम मंजूर कर लिया तो सभी उसपर सच्चाईके साथ अमल करें।

इसमें तो कुछ भी शक नहीं है कि कांग्रेसके कार्यक्रमके जिन दूसरे अंगोंसे उस कार्यक्रमकी अबतक शोभा बढ़ी है और जिनकी तरफ डॉक्टर लोहियाने संकेत किया है उन्हें प्रतिज्ञाके कारण छोड़ देनेकी जरूरत नहीं है। हर तरहके अन्यायके विरुद्ध आन्दोलन करना तो राजनीतिक जीवनका प्राण है। मेरा जोर इसी बात पर है कि उस आन्दोलनको रचनात्मक कार्यक्रमसे अलग कर देनेसे उसमें हिंसाकी झलक आ ही जायगी। मैं अपनी बात उदाहरण देकर समझाऊँ। अहिंसाके प्रयोगोंसे मैं यह सीखा हूँ कि असली अहिंसाका अर्थ सब लोगोंका शरीर-श्रम है। एक रूसी दार्शनिक बोंडरेफने इसे रोटीके लिए श्रम कहा है। इसका परिणाम यह होगा कि लोगोंमें आपसमें गहरे-से-गहरा सहयोग हो। दक्षिण अफ्रीकाके पहिले सत्याग्रही सबकी भलाई और सम्मिलित कोषके लिए मेहनत करते थे और उन्हें उड़ते पक्षियोंकी सी बेफिक्री रहती थी। उनमें हिन्दू, मुसलमान (शिया और सुन्नी), ईसाई (प्रोटेस्टेंट और रोमन कैथोलिक), पारसी और यहूदी सभी थे। अंग्रेज और जर्मन भी थे। धन्धेके लिहाजसे उनमें वकील, इमारत और बिजलीकी विद्या जाननेवाले इंजीनियर, छापनेवाले और व्यापारी थे। सत्य और अहिंसाके व्यवहारसे धार्मिक झगड़े मिट गये थे और हमने सब धर्मोंमें सत्यके दर्शन करना सीख लिया था। दक्षिण अफ्रीकामें मैंने जो आश्रम कायम किये उनमें एक भी मजहबी झगड़ा हुआ हो ऐसा मुझे याद नहीं आता। सब लोग छपाई, बढ़ईगिरी, जूते बनाना, बागवानी, इमारत वगैरह, हाथके

काम करते थे। यह मेहनत किसी को भाररूप नहीं लगती थी। उसमें आनन्द आता था। शामका समय पढ़ने-लिखनेमें जाता था। सत्याग्रही सेनाका अग्रणी-दल इन्हीं स्त्री, पुरुषों और लड़कोंका हुआ। इनसे ज्यादा वीर या सच्चे साथी मुझे नहीं मिल सकते थे। हिन्दुस्तानमें दक्षिण अफ्रीकाका-सा ही अनुभव रहा और मुझे भरोसा है कि उसमें कुछ सुधार ही हुआ। सभी लोग मानते हैं कि अहमदाबादका मजदूर-संगठन भारतमें सबसे बढ़िया है। उसका काम जिस ढंगसे शुरू हुआ था उसी तरह चलता रहा तो अन्तमें वहाँकी मिलोंमें मौजूदा मालिकों और मजदूरोंकी मालिकी होकर रहेगी। यह स्वाभाविक परिणाम न निकला तो पता चल जायगा कि संगठनकी अहिंसामें खामियाँ थीं। बार्डोलीके किसानोंने वल्लभभाईको सरदारकी पदवी दी और अपनी लड़ाई फतह की। बोरसद और खेड़ाके किसानोंने भी वैसा ही किया। ये सब बरसोंसे रचनात्मक कार्यक्रम पर अमल कर रहे हैं। मगर इस अमलसे उनके सत्याग्रही गुणोंका ह्रास नहीं हुआ है। मुझे पूरा यकीन है कि सविनय-भंग हुआ तो अहमदाबादके मजदूर और बार्डोली और खेड़ाके किसान भारतके और किसी भी हिस्सेके किसानों और मजदूरोंसे जौहर दिखानेमें पीछे नहीं रहेंगे। चौतीस सालके सत्य और अहिंसाके लगातार प्रयोग और अनुभवसे मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि यदि अहिंसाका ज्ञानपूर्वक शरीर-श्रमके साथ संबंध न होगा और हमारे पड़ोसियोंके साथ रोजमर्राके व्यवहारमें उसका परिचय न मिलेगा तो अहिंसा टिक नहीं सकेगी। यह है रचनात्मक कार्यक्रमका रहस्य। यह साध्य नहीं है, साधन है; मगर है इतना अनिवार्य कि उसे साध्य भी समझ लें तो बेजा नहीं। 'अहिंसक विरोध'की शक्ति रचनात्मक कार्यक्रमपर ईमानदारीके साथ अमल करनेसे ही पैदा हो सकती है।

हरिजन-सेवक
२७ जनवरी, १९४०

❀

अहिंसा, इस्लाम और सिक्ख धर्म

प्र०—सब धर्मोंका आदर करनेका उपदेश देकर आप इस्लामकी ताकतको तोड़ते हैं। आप पठानोंकी बन्दूकें छीनकर उन्हें नामर्द बना देना चाहते हैं। इस हालतमें हममें और आपमें मेल तो कहीं हो ही नहीं सकता।

उ०—मैं नहीं जानता कि खिलाफतके दिनोंमें इस संबंधमें आपके क्या विचार थे। मैं आपको हालहीका थोड़ा इतिहास बता दूँ। खिलाफत-आंदोलनकी नींव मैंने ही डाली थी। अली-बन्धुओंकी रिहाईके लिए जो हलचल हुई थी उसमें भी मेरा हाथ था। इसलिए जब अली-बन्धु रिहा हुए तो वे और ख्वाजा अब्दुल मजीद, शुऐब कुरैशी, मुअज्जम अली और मैं, हम सब मिले और कार्यकी एक योजना निकाली जिसे सब लोग जानते हैं। उन सबके साथ मैंने अहिंसाके सब पहलुओंपर चर्चा की और उन्हें बताया कि सच्चे मुसलमानोंकी भाँति अगर वे अहिंसाको स्वीकार न कर सकें तो मेरे लिए उनके पास कोई जगह नहीं रहेगी। वे मेरी बातके कायल तो हो गये, मगर उन्होंने कहा कि बिना हमारे उलेमाओंकी ताईदके वे इसपर अमल न कर सकेंगे। और इसलिए स्वर्गीय प्रिंसिपल रुद्रके मकानपर कुछ

उलेमाजमा हुए। प्रिंसिपल रुद्रके जीवन-कालमें जब-जब दिल्ली आता था, उन्हींके घरपर ठहरता था। इन उलेमाओंमें और-और लोगोंके साथ मौलाना अबुल कलाम आजाद, मरहूम मौलाना अब्दुल बारी, मौलाना अब्दुल मजीद और मौलाना आजाद सुभानी भी थे। ये नाम मैं अपनी याददाश्तसे ही लिख रहा हूँ। पहले दोकी तो मुझे अच्छी तरह याद है। बाकी उस समय न भी रहे हों तो बादमें शामिल जरूर हो गये थे। मौलाना अबुल कलाम आजादने इस बहसमें प्रमुख भाग लिया था। सबने यह फैसला किया कि अहिंसामें विश्वास करना इस्लाममें जायज ही नहीं, बल्कि जरूरी भी है, क्योंकि इस्लाममें अहिंसाको हमेशा हिंसासे ज्यादा पसन्द किया गया है। यह बात गौर करनेके काबिल है कि सन् १९२० में, जब कांग्रेसने अहिंसाको स्वीकार किया, उससे पहलेकी यह घटना है। मुसलमानोंके कई बड़े-बड़े जलसोंमें मुस्लिम विद्वानोंने अहिंसापर बहुतसे व्याख्यान और उपदेश दिये। बादमें बिना किसी दुविधाके सिक्ख भी आये और उन्होंने अहिंसापर मेरे विचारोंको कान लगाकर सुना। वे महान् और गौरवशाली दिन थे। अहिंसा तो संक्रामक ही साबित हुई। उसके जादूसे जनतामें इतनी जागृति हुई जितनी पहले इस देशमें कभी नहीं देखी गयी थी। सब कौमोंने अनुभव किया कि वे एक हैं और उन्होंने सोचा कि अहिंसासे उन्हें एक ऐसी ताकत मिल गयी जिसका मुकाबिला कोई कर नहीं सकता। वे उजले दिन गये और अब ऊपरके जैसे- सवालोंके जवाब देनेके लिए मुझे गम्भीरतासे बाध्य होना पड़ा रहा है। अहिंसामें वह श्रद्धा मैं आपको नहीं दे सकता जोकि आप उसमें नहीं रखते हैं। वह श्रद्धा तो ईश्वर ही आपको दे सकता है। मेरी श्रद्धा तो अब भी वैसी ही अचल है। आप और आप जैसे दूसरोंकी मेरी प्रवृत्तियोंपर सन्देह करनेके बावजूद भी मेरा यह दावा है कि एक-दूसरेके धर्मके प्रति आदर एक शान्तिदायक समाजमें स्वाभाविक रूपसे ही होता है। विचारोंका खुला घात-प्रतिघात और किसी भी दशामें असम्भव है। धर्म हमारे स्वाभावकी बर्बरताको संयत करनेके लिए है, उसे ढीला छोड़ देनेके लिए नहीं। ईश्वर केवल एक है, यद्यपि नाम उसके अनेक हैं। क्या यह आप आशा नहीं करते कि मैं आपके धर्मका आदर करूँ? यदि आप यह आशा करते हैं, तो क्या मैं आपसे नहीं चाह सकता कि आप भी मेरे धर्मका आदर करें? आप कहते हैं कि मुसलमानोंकी हिन्दुओंके साथ कुछ भी समानता नहीं है। आपके इस अलगावके बावजूद भी संसार धीरे-धीरे विश्वव्यापी भाई-चारेकी ओर कदम बढ़ा रहा है। वहाँ जाकर मानव-जाति एक राष्ट्र हो जायगी। सामान्य लक्ष्यकी ओर जो कूच हो रहा है, उसे न तो आपही रोक सकते हैं, न मैं रोक सकता हूँ। पठानोंको नामर्द बनानेका जवाब तो बादशाह खानसे मिलेगा। हमसे मिलनेसे पहलेही उन्होंने अहिंसाको स्वीकार कर लिया था। उनका विश्वास है कि पठानोंका अहिंसाके द्वारा ही कुछ भविष्य बन सकता है। अहिंसा न होती तो और नहीं तो उनकी आपसी खूँरेजी ही उन्हें आगे बढ़नेसे रोके रहेगी और उनका ख्याल है कि अहिंसाको स्वीकार करनेके बाद ही पठान सीमाप्रान्तमें जम सके हैं और ईश्वरके सेवक खुदाईखिदमतगार बने हैं।

हरिजन-सेवक

१० फरवरी, १९४०

अहिंसा बनाम स्वाभिमान

प्रश्न—मैं एक विश्वविद्यालयका छात्र हूँ। कल शामको हम कुछ लोग सिनेमा देखने गये थे। खेलके बीचमें ही हममेंसे दो बाहर गये और अपनी जगहोंपर रूमाल छोड़ गये। लौटने पर हमने देखा कि दो अंग्रेज सिपाही उन बैठकोंपर बेतकल्लुफीसे कब्जा किये हुए हैं। उन्होंने हमारे मित्रोंकी साफ-साफ चेतावनी और अनुनय-विनयकी कुछभी परवाह नहीं की और जब जगह खाली करनेके लिए कहा गया तो उन्होंने इन्कार ही नहीं किया, लड़नेको भी आमादा हो गये। उन्होंने सिनेमाके मैनेजरको भी धमका दिया। वह हिन्दुस्तानी था, इसलिए आसानीसे दब गया। अन्तमें छावनीका अफसर बुलाया गया तब उन्होंने जगह खाली की। वह न आया होता तो हमारे सामने दो ही उपाय थे। या तो हम मारपीट पर उतर पड़ते और स्वाभिमानकी रक्षा करते या दबकर चुपचाप दूसरी जगह बैठ जाते। पिछली बातमें बड़ा अपमान होता।

उत्तर—मैं स्वीकार करता हूँ कि इस पहेलीको हल करना मुश्किल है। ऐसी स्थितिका अहिंसक तरीकेपर मुकाबिला करनेके दो उपाय सूझते हैं। पहला यह कि जबतक जगहें खाली न हों अपनी बातपर मजबूतीसे अड़े रहना। दूसरा यह कि जगह छीन लेनेवालोंके सामने जान-बूझकर इस तरह खड़े हो जाना कि उन्हें तमाशा दिखायी न दे। दोनों सूरतोंमें आपकी पिटाई होनेका जोखम है। मुझे अपने उत्तरसे सन्तोष नहीं है। मगर हम जिस विशेष परिस्थितिमें हैं, उसमें इससे काम चल जायगा। बेशक, आदर्श जवाब तो यह है कि निजी अधिकार छिन जानेकी हम परवाह न करें, बल्कि छीननेवालोंको समझायें। वे हमारी न सुनें तो सम्बन्धित अधिकारियोंसे शिकायत कर दें और वहाँ भी न्याय न मिले तो मामला ऊँची-से-ऊँची अदालतमें ले जायें। यह कानूनका रास्ता है। समाजकी अहिंसक कल्पनामें इसकी मनाही नहीं है। कानूनको अपने हाथमें न लेना असलमें अहिंसक मार्ग ही है। पर इस देशमें आदर्श और वस्तुस्थितिका कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि जहाँ गोरोंका और खास तौर पर गोरे सिपाहियोंका मामला हो वहाँ हिन्दुस्तानियोंको न्याय मिलनेकी प्रायः कुछ भी आशा नहीं हो सकती। इसलिए जैसा मैंने सुझाया है कुछ वैसा ही करनेकी जरूरत है। मगर मैं जानता हूँ कि जब हममें सच्ची अहिंसा होगी तो कठिन परिस्थितिमें होनेपर भी हमें बिना प्रयत्नके ही कोई अहिंसक उपाय सूझे बिना नहीं रहेगा।

हरिजन-सेवक
१७ फरवरी, १९४०

नोआखालीके हिन्दुओंको मेरी सलाह

मेरे मलिकंदा-प्रवासके समय नोआखालीसे मनोरञ्जन बाबू और अन्य मित्र अपने इलाकेके हिन्दुओंकी मुसीबतोंके बारेमें मुझसे मिलने आये। मनोरंजन बाबू कुछ दिनोंसे इस विषयमें मुझसे पत्र-व्यवहार भी कर रहे थे। मैंने शिकायतोंकी जाँच नहीं की है। इसके लिए मेरे पास न वक्त था, न इच्छा थी। यह प्रान्तीय कांग्रेस तथा अन्तमें केन्द्रीय संस्थाके अधिकार-क्षेत्रकी बात है। लेकिन मुझे मोटे तौरपर सलाह देनेमें कोई दिक्कत नहीं हुई। उनका मामला, कमोबेश, सक्खर-प्रकरण जैसा ही है। मात्रामें बहुत ज्यादा अन्तर है। लेकिन मैं पूरी तरह अनुभव करता हूँ कि नोआखालीमें जिस तरह की विस्तृत गुण्डई फैली बतायी जाती है, उसका मुकाबला कोई भी लोक निर्वाचित सरकार सफलतापूर्वक नहीं कर सकती। यह तत्त्वतः एक आत्म-रक्षाका मामला है। आत्म-सम्मान और आबरूकी रक्षा दूसरोंके जरिये नहीं की जा सकती। इनकी रक्षा तो हरेक स्त्री-पुरुषको खुद करनी चाहिए। सरकार तो ज्यादा-से-ज्यादा इतना कर सकती है कि अपराध या जुल्म हो जानेके बाद अपराधीको सजा दे दे। पर वह अपराध होने ही न देनेका विश्वास नहीं दिला सकती—जहाँतक सजा रोकका काम देती है वहींतक इस दिशामें वह कुछ कर सकती है। आत्म-रक्षा हिंसात्मक और अहिंसात्मक दो तरीके की हो सकती है। मैंने सदा अहिंसात्मक रक्षाकी सलाह दी है और उसीपर जोर दिया है। लेकिन मैं इतना मानता हूँ कि हिंसात्मक रक्षाकी तरह ही अहिंसात्मक रक्षाका भी ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। हिंसात्मक रक्षाके लिए जिस तरहकी शिक्षा और तैयारीकी जरूरत पड़ती है उससे इसकी शिक्षा और तैयारी भिन्न है। इसलिए अगर अहिंसात्मक आत्मरक्षणकी शक्तिका अभाव है, तो हिंसात्मक साधनों और उपायोंका आश्रय लेनेमें कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। किन्तु चूँकि मनोरंजन बाबू एक पुराने कांग्रेसी है, इसलिए उन्होंने कहा—"आप तो कहते हैं कि मैं आत्मरक्षाके लिए भी प्रत्याक्रमण नहीं करूँगा?" मैंने उत्तर दिया—"अवश्य, मेरा मत तो यही है। लेकिन गया-कांग्रेसमें एक प्रस्ताव पास हुआ था कि आत्मरक्षार्थ बल-प्रयोग कांग्रेसियोंके लिए क्षम्य है। मैंने कभी इस प्रस्तावको उचित नहीं बताया है। अगर आत्मरक्षाके लिए हिंसा क्षम्य मान ली जाय तो अहिंसा निरर्थक हो जाती है। आक्रमणकारी राष्ट्रके विरुद्ध राष्ट्रीय प्रतिरोध आत्मरक्षणके सिवा और क्या है? इसलिए आपने जिस स्थितिका वर्णन किया है उसमें अपनी रक्षाके लिए यदि हिंसात्मक उपायोंका सहारा लेनेकी सोचते हों तो मैं कांग्रेससे अलग हो जानेकी सलाह दूँगा।" मनोरंजन बाबूने पूछा—"लेकिन मान लीजिए, मैंने गयावाला प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तो क्या पीड़ित हिन्दुओंकी रक्षा करनेमें मुझपर साम्प्रदायिकताका अपराध लगाया जा सकेगा?" मैंने उत्तर दिया—"हर्गिज नहीं। पहली बात यह कि कांग्रेसी होनेसे आपका हिन्दू होना खत्म नहीं हो जाता। साम्प्रदायिकताके दोषी आप तब होंगे जब गलत या सही हर हालतमें हिन्दुओंका पक्ष लें। इस मामलेमें आप हिन्दुओंकी रक्षा इसलिए नहीं करते कि वे हिन्दू हैं, बल्कि इसलिए करते हैं कि वे पीड़ित हैं। मैं आशा करूँगा कि अगर आप मुसलमानोंको हिन्दुओं द्वारा

पीड़ित होते देखें तो उनकी भी रक्षा करें। कांग्रेसी सम्प्रदाय-भेद मानता है, उसे मानना चाहिए।"

इसके बाद मिलनेवालोंने कांग्रेसके झगड़ोंपर बातचीत की और मुझसे कहा कि कांग्रेसकी तरफसे सहायता पानेसे निराश हो जानेके कारण बहुतेरे हिन्दू हिन्दू-महासभामें शामिल हो गये हैं। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या हमलोग भी ऐसा कर सकते हैं। मैंने उनसे कहा कि सिद्धान्ततः तो मुझे इसमें आपत्ति की कोई बात नहीं दिखायी देती। पर मैं इसका निर्णय नहीं कर सकता कि स्थानीय परिस्थितियोंके अनुसार यह उचित होगा या नहीं। लेकिन अगर मैं कांग्रेसी होऊँ और मुझे महसूस हो कि उस हैसियतसे मैं प्रभावशाली तरीकेपर कुछ नहीं कर सकता तो मैं उस संस्थामें शामिल होनेसे नहीं हिचकूँगा, जो प्रभावशाली ढंगपर सहायक हो सके। पर इसके साथ मैंने यह भी कह दिया कि कोई जिम्मेदार कांग्रेसी कांग्रेस-संस्थामें पदाधिकारी होते हुए हिन्दू-महासभाका, जो स्पष्टतः एक साम्प्रदायिक संस्था है---सदस्य नहीं हो सकता। सारा सवाल कठिनाइयोंसे भरा हुआ है। इस अवसर पर शान्ति, सचाई और हिम्मतकी जरूरत है। अगर कांग्रेस प्रभावशाली रूपसे अहिंसात्मक नहीं बनेगी तो साम्प्रदायिकता की विजय निश्चित है। अगर वह अहिंसासे खेलवाड़ करेगी तो खुद आचरणमें साम्प्रदायिक हो जायेगी। क्योंकि कांग्रेसियोंमें हिन्दुओंका बहुमत है और अगर उन्हें अहिंसाके प्रभावशाली उपयोगका ज्ञान नहीं होगा तो फिर उनका हिंसाकी तरफ बहक जाना निश्चित है। मेरे मनमें तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि कांग्रेस तभी असाम्प्रदायिक रह सकती है, जब यह सब मामलोंमें अहिंसात्मक रहे। ऐसा नहीं हो सकता कि यह सिर्फ शासकोंके प्रति अहिंसात्मक रहे और दूसरोंके प्रति हिंसात्मक हो। यह मार्ग तो अयश और विनाशका मार्ग है।

हरिजन-सेवक
२ मार्च, १९४०

सर्वोत्तम वृत्तियाँ कैसे जगायें ?

अंग्रेजोंके एक हिन्दुस्तानी हिमायती लिखते हैं:---

"अगर हमारा उद्देश्य अपनी अहिंसाके जरिये अंग्रेजोंकी अच्छी-से-अच्छी वृत्तियाँ जागृत करना और इस तरह आपसमें विश्वास पैदा करना है, तो इसमें हम बुरी तरह असफल हुए हैं। हमने जो कुछ कहा है, उसके अनुसार किया नहीं। हमारी अहिंसाका सबसे अच्छा समय (यानी जब हमने इंगलैंडके प्रति कम-से-कम घृणा पैदा की) वह था, जब प्रान्तोंमें कांग्रेसका शासन था। गवर्नरोंके साथ व्यक्तिगत सम्पर्कके कारण आपसमें विश्वास पैदा हुआ था। उस वक्त भी दिल द्वेषसे खाली न थे, लेकिन अब तो सारा वायुमण्डलही फिरसे इंगलैंडके प्रति घृणा-ही-घृणाके मारे तीव्र हो रहा है। सद्भावकी जगह कटुता और विश्वासकी जगह अविश्वास बढ़ रहा है। हमारे सारे कामों और दलीलोंसे अंग्रेजोंकी बुरी-से-बुरी वृत्तियाँ जागृत हो रही हैं। हमने अपनी अहिंसाका या सद्भाव बढ़ानेकी इच्छाका क्या प्रत्यक्ष प्रमाण दिया है? बेशक, सशस्त्र विद्रोह

और अविनयपूर्ण आज्ञाभंग करके दबानेकी गुंजायश नहीं रखी गयी है। लेकिन आज्ञा-भंगकी धमकी तो है ही, और चूंकि शुद्ध अहिंसा भी अभी तो नहीं है इसलिए लड़ाईकी धमकी मात्रसे भी हिंसक विचार जागृत हुए बिना नहीं रह सकते और जिस सद्भावके बढ़ानेकी प्रतिज्ञा ली गयी थी उसकी कोई आशा दिखायी नहीं देती। तो फिर क्या लेन-देनके आधार पर किया गया समझौता अधिक उपयुक्त साधन नहीं है, जिससे

(१) अहिंसक वायुमण्डल उत्पन्न किया जा सके ;

(२) सद्भाव पैदा हो सके ;

(३) अंग्रेजोंकी सर्वोत्तम वृत्तियाँ जागृत की जा सकें ; और

(४) परस्पर सहयोगके जरिये स्वाधीनता-प्राप्तिका जल्दीका रास्ता खोजा जा सके ?"

इस दलीलसे लेखकके हृदयकी तो तारीफ होती है, लेकिन वे अहिंसाके तरीकेको नहीं समझे। वे आधी बात मानकर चले हैं। हमारा लक्ष्य अंग्रेजोंकी सर्वोत्तम वृत्तियाँ जागृत करना ही नहीं है, बल्कि अपना काम करते हुए जागृत करना है। हम अपने मार्गपर चलना छोड़ दें तो उनकी सद्वृत्तियाँ न जगाकर उनकी दुर्वृत्तियोंको बल पहुँचायेंगे। सद्वृत्तियोंको जगानेका अर्थ खुश करना नहीं है। जब हमें किसी बुराईसे निपटना है तो हमें बुराई करनेवालेको अशांत करनेकी जरूरत हो सकती है। हमें उसके सद्गुणोंका विकास करना है तो यह जोखम उठाना ही पड़ेगा। मैंने अहिंसात्मक उपायको जहर न फैलने देनेवाले और हिंसक उपायको जहर मारनेवाले इलाजकी उपमा दी है। दोनोंका उद्देश्य बुराईको मिटाना ही है और इसलिए उनसे कुछ-न-कुछ अशान्ति तो होती है। अक्सर वह अनिवार्य होती है। पहला इलाज बुराई करनेवालेको हानि नहीं पहुँचाता।

जहाँ मैं समालोचक मित्रकी इस बातसे सहमत हूँ कि हमारी अहिंसा शुद्ध नहीं रही है, वहाँ मैं इस ख्यालसे सहमत नहीं हूँ कि हम बुरी तरह असफल हुए हैं। मैं यह नहीं मान सकता कि कांग्रेसी शासनका समय अहिंसाका सर्वोत्तम समय था। उन दिनों अहिंसा निष्क्रिय रही। एक पक्ष दूसरेको खुश रखनेकी कोशिश करता था। दोनोंके दिलोंमें तो और ही कुछ था, पर ऊपरसे एकही नीति पर चलते दिखाई देते थे। अहिंसाका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण हमने दिया है तो यह दिया है कि कांग्रेसके असरसे हिंसक कार्रवाई बिलकुल नहीं होने पायी है। बहुत नजदीक होनेके कारण हम इस बातका सही-सही माप करनेमें असमर्थ हैं कि करोड़ों स्त्री-पुरुषोंने कितना भारी संयम रखा है। मैं कबूल कर लेता हूँ कि अभी हमारे दिलोंसे अहिंसा नहीं निकली है। मगर जनताके आश्चर्यजनक संयमको देखकर मुझे बहुत आशा होती है कि दिलोंकी हिंसा समय पाकर विरोधीके लिए सद्भावमें बदल जायेगी। समालोचककी नीतिको मैं भीरुता कहूँगा, उसपर चलनेसे यह बात कभी पैदा नहीं होगी। वैर-भाव तभी नष्ट होगा जब उसे भूखों मारनेके लिए काफी अर्सेतक संयम रखा जायगा। अन्तमें जाकर अंग्रेजोंके मनपर भी इसका असर उतना ही अच्छा होगा। अंग्रेजोंको पता लग जायेगा कि जहाँतक अहिंसासे काम लिया गया वहाँतक वह सच्ची थी और दिलोंमें उनके खिलाफ शिकायत रखते हुए भी, साधारण जनता बहुत संयम रख सकी।

समझौतेका तो आधार ही लेन-देनकी वृत्तिपर होता है, मगर बुनियादी बातोंपर समझौता करना आत्म-समर्पण होता है, क्योंकि इसमें देना-ही-देना होता है, लेनेको कुछ नहीं होता। समझौतेका समय उसी वक्त आ सकता है जब बुनियादी मामलोंपर दोनों एकमत हों, अर्थात् ब्रिटिश सरकार यह निश्चय कर लेगी कि जिस विधानके अनुसार हिन्दुस्तानमें शासन होगा उस विधानको अंग्रेज नहीं हिन्दुस्तानी बनायें। वे विधानके मामलेको चुने हुए भारतीय प्रतिनिधियोंकी पंचायतके सुपुर्द करनेको राजी नहीं हो रहे हैं, यह एक खतरनाक घूँट है। कम तादादवालोंको जरा भी डरनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि उनके लिए जिन संरक्षणोंकी आवश्यकता होगी उनका निर्णय उन्हींके अपने प्रतिनिधि करेंगे। राजाओंको भी डरनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि वे न चाहें तो शामिल न हों। जो पक्ष सफल बाधा डाल सकता है और डाल रहा है वह अकेला प्रबल पक्ष या शासक पक्ष ही है। यह पक्ष जबतक इस नतीजेपर न पहुँच जाय कि वह राज नहीं कर सकता या नहीं करना चाहता तबतक कोई समझौता न होगा।

हरिजन-सेवक
३० मार्च, १९४०

६

चर्खा-स्वराज-अहिंसा

एक सज्जन लिखते हैं कि अब जब कि सविनय अवज्ञा-भंगका वातावरण बन रहा है, पुनरावृत्तिकी परवा न करके भी, मुझे एक ही लेखके अन्दर अपनी इस दलीलका सार दे देना आवश्यक है कि चर्खा, स्वराज और अहिंसामें क्या व्यापक सम्बन्ध है। मै बड़ी खुशीके साथ उनकी बात मानकर यह प्रयत्न करता हूँ।

चर्खा मेरे लिए तो जनसाधारणकी आशाओंका प्रतिनिधित्व करता है। जनसाधारणकी स्वतंत्रता, जैसी भी वह थी, चर्खेके खात्मेके साथ ही खत्म हुई। चर्खा ग्रामवासियोंके लिए खेतीका पूरक धंधा था, और खेतीकी इससे प्रतिष्ठा थी। विधवाओंका यह बन्धु और सहारा था। ग्रामवासियोंको वह काहिलीसे भी बचाता था, क्योंकि इसमें कपाससे रुई व बिनौलोंको अलग-अलग करना, रुईकी धुनाई, कताई, मँडाई, रंगाई, बुनाई आदि अगले-पिछले सभी उद्योग शामिल थे। गाँवके बढ़ई और लोहार भी इसके कारण काममें लगे रहते थे। चर्खेसे सत्तर करोड़ गाँव आत्म-निर्भर बने हुए थे। चर्खेके जानेसे घानीसे तेल निकालने जैसे अन्य ग्रामीण उद्योग भी नष्ट हो गये। इन उद्योगोंका स्थान किन्हीं नये उद्योगोंने नहीं लिया, इसलिए गाँववाले अपने विविध धंधोंसे वंचित हो गये और अपनी उत्पादक बुद्धि तथा जो थोड़ी-बहुत सम्पत्ति उन धंधोंसे मिल सकती थी उसको भी खो बैठे।

दूसरे जिन देशोंमें दस्तकारियोंका नाश हुआ है उनकी उपमासे हमारा काम नहीं चलेगा, क्योंकि वहाँ ग्रामवासियोंको उनकी क्षतिपूर्ति करनेवाली कुछ सहूलियतें तो मिल गयी हैं जबकि

भारतीय ग्रामीणोंको व्यावहारिक रूपमें ऐसी कोई सुविधा नहीं मिली है। पश्चिमके जिन देशोंका उद्योगीकरण हुआ है वे अन्य राष्ट्रोंका शोषण कर रहे हैं, जब कि हिन्दुस्तान स्वयं ही एक शोषित देश है। इसलिए गाँववालोंको अगर आत्मनिर्भर बनना है तो सबसे स्वाभाविक बात यही हो सकती है कि चर्खे और उससे सम्बन्धित सब चीजोंका पुनरुद्धार किया जाय।

यह पुनरुद्धार तभी हो सकता है जब कि बुद्धि और देशभक्ति-वाले स्वार्थत्यागी भारतीयोंकी सेना दिलोजानसे गाँवोंमें चर्खेका सन्देश फैलानेके काममें लग जाये और ग्रामीणोंकी निस्तेज आँखोंमें आशा और प्रकाशकी ज्योति जगमगा दे। वास्तविक सहयोग और बयस्क-शिक्षाके प्रसारका यह बहुत बड़ा प्रयत्न है। चर्खेके शान्त किन्तु निश्चित और जीवनप्रद 'रिवोल्यूशन' की तरह ही इससे शान्त और निश्चित क्रान्ति होती है।

चर्खेके बीस बरसके अनुभवने मुझे इस बातका विश्वास करा दिया है कि मैंने उसके पक्षमें यहाँ जो दलीलें दी हैं वह बिल्कुल सही हैं। चर्खेने गरीब मुसलमानों और हिन्दुओंकी लगभग एक समान ही सेवा की है। इसके द्वारा कोई पाँच करोड़ रुपया बिना किसी दिखावे और शोरगुलके गाँवोंके इन लाखों कारीगरोंकी जेबोंमें पहुँच चुका है।

इसलिए बिना किसी हिचकिचाहटके मैं कहता हूँ कि सभी धर्म-विश्वासोंवाले जनसाधारणकी दृष्टिसे चर्खा हमें जरूर स्वराजतक ले जायगा। क्योंकि चर्खा गाँवोंको उनके उपयुक्त स्थानपर पहुँचाकर ऊँच-नीचके भेद-भावको नष्ट करता है।

लेकिन चर्खा स्वराज नहीं ला सकता। बल्कि असलियत तो यह है कि जबतक राष्ट्रका अहिंसामें विश्वास न हो तबतक यह आगे नहीं बढ़ेगा। क्योंकि यह काफी उत्तेजक नहीं है। आजादीके लिए छटपटानेवाले देशभक्त चर्खेको हल्की नजरसे देखनेके आदी हैं। स्वातंत्र्य-प्रेमी तो लड़कर विदेशी शासकका अन्त करनेके जोशमें भरे हुए हैं। वे सारे दोष उसीमें निकालते हैं और अपनेमें कोई खराबी नहीं समझते। वे ऐसे देशोंके उदाहरण देते हैं जिन्होंने खूनकी नदियाँ बहाकर आजादी पायी है। सो अहिंसाके बिना चर्खा बिलकुल बेलुत्फ और बेकार है।

१९१९ ई० में भारतके स्वातंत्र्य-प्रेमियोंके सामने अहिंसा स्वराज-प्राप्तिके एकमात्र और निश्चित साधनके रूपमें रखी गयी थी और चर्खा अहिंसाके प्रतीकके रूपमें। १९२१में इसे राष्ट्रीय झण्डेमें गौरवपूर्ण स्थान मिला। लेकिन अहिंसा हिन्दुस्तानके हृदयकी गहराई तक नहीं गयी, इसलिए चर्खेको उसका उपयुक्त महत्त्व कभी नहीं मिला। उसे वह तबतक मिलेगा भी नहीं, जबतक कि कांग्रेसजनोंकी भारी तादाद अहिंसामें जीवित श्रद्धा न रखने लगे जाय। जब वे ऐसा करेंगे तो बिना किसी दलीलके खुद ही यह समझ लेंगे कि अहिंसाका चर्खेके सिवा और कोई प्रतीक नहीं है और इसको सर्वमान्य बनाये बिना अहिंसाका कोई प्रत्यक्ष प्रदर्शन नहीं होगा। और यह तो सभी मानते हैं कि अहिंसाके बगैर अहिंसात्मक कानून-भंग नहीं हो सकता। मेरी दलील गलत हो सकती है, मेरा आधार भी गलत हो सकता है। लेकिन मेरे जो विचार हैं

उन्हें रखते हुए मुझे यह घोषणा करने दीजिए कि मैंने जो शर्तें रखी हैं उनकी पूर्ति हुए बिना मैं सविनय-भंगका एलान नहीं कर सकता।

हरिजन-सेवक
१३ अप्रैल, १९४०

❀

श्री जयप्रकाशका एक प्रस्ताव

श्री जयप्रकाशनारायणने मेरे पास एक प्रस्तावका नीचे लिखा मसविदा भेजा था, और मुझे लिखा था कि अगर मैं इस प्रस्तावमें दी गयी तस्वीरसे सहमत होऊँ, तो इसे रामगढ़में होनेवाली कांग्रेस-कार्यसमितिके सामने पेश कर दूँ। प्रस्ताव इस प्रकार था:—

"कांग्रेस और राष्ट्रके सामने आज एक महान् राष्ट्रीय उथल-पुथलका अवसर उपस्थित है। आजादीकी आखिरी लड़ाई जल्द ही लड़ी जानेवाली है, और यह सब ऐसे समय हो रहा है, जब महान् शक्तिशाली परिवर्तनोंके द्वारा सारा संसार जड़से हिलाया जा रहा है। दुनिया भरके विचारक लोग आज इस बातके लिए चिंतित हैं कि इस यूरोपीय युद्धके महानाशमेंसे एक ऐसी नयी दुनियाका जन्म हो, जिसकी जड़ राष्ट्रों-राष्ट्रों और मनुष्यों-मनुष्योंके बीचके सद्भावपूर्ण सहयोगपर कायम की गयी हो। ऐसे समय कांग्रेस स्वतंत्रताके अपने उन आदर्शोंको निश्चित-रूपसे व्यक्त कर देना आवश्यक समझती है, जिनपर कि वह अड़ी हुई है और जिनके लिए वह जल्दी ही देशकी जनताको अधिक-से-अधिक कष्ट सहनेका न्यौता देनेवाली है।

"स्वतंत्र भारतीय राष्ट्रका काम होगा कि वह राष्ट्रोंके बीचमें शान्ति-स्थापना करे, सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरणके लिए यत्नशील रहे और राष्ट्रीय झगड़ोंको किसी स्वतंत्रतापूर्वक स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय सत्ता द्वारा शान्तिपूर्वक निबटानेकी कोशिश करे। वह खासतौरपर अपने पड़ोसी देशोंके साथ, फिर वे महान् शक्तिशाली साम्राज्य हों या छोटे-छोटे राष्ट्र, मित्र बनकर रहनेका यत्न करेगा और किसी भी विदेशी राज्य या प्रदेश पर अपना अधिकार जमानेकी इच्छा न करेगा।

"देशके सभी कायदे-कानून सर्वसाधारण जनता द्वारा स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्त की गयी इच्छाके अनुसार बनाये जायेंगे, और देशमें शान्ति और सुव्यवस्था कायम रखनेका अन्तिम आधार जनसाधारणकी स्वीकृति और सम्मति पर ही रहेगा।

"स्वतंत्र भारतीय राष्ट्रमें जनताको सम्पूर्ण व्यक्तिगत और नागरिक स्वतंत्रता होगी एवं सांस्कृतिक और धार्मिक मामलोंमें पूरी आजादी दी जायगी। पर इसका यह मतलब नहीं होगा कि हिन्दुस्तानकी जनता अपनी राष्ट्रीय पंचायत द्वारा अपने लिए जो शासन-विधान तैयार करेगी उसको हिंसा द्वारा उलट देनेकी आजादी किसीको रहेगी।

गांधीजी

"देशकी राष्ट्रीय सरकार राष्ट्रके नागरिकोंके बीच किसी प्रकारका भेदभाव न रखेगी। प्रत्येक नागरिकको समान अधिकार रहेंगे। जन्म और परम्पराके कारण मिलनेवाली सभी सुविधाएँ या भेदभाव मिटा दिये जायँगे। न तो सरकार द्वारा किसीको कोई पद या उपाधि दी जायगी और न परम्परागत सामाजिक दर्जेके कारण ही कोई किसी उपाधिका हकदार माना जायगा।

"राज्यका राजनीतिक और आर्थिक संगठन सामाजिक न्याय और आर्थिक स्वतंत्रताके सिद्धान्तोंपर किया जायगा। इस संगठनके फलस्वरूप जहाँ समाजके प्रत्येक व्यक्तिकी राष्ट्रीय आवश्यकताओंकी पूर्ति होगी, वहाँ इसका उद्देश्य केवल भौतिक आवश्यकताओंकी तृप्ति ही न रहेगा बल्कि अपेक्षा यह रखी जायगी कि इसके कारण राष्ट्रका हर एक व्यक्ति स्वास्थ्यपूर्ण जीवन बिता सके और अपना नैतिक और बौद्धिक विकास कर सके। इसके लिए और समाजमें समताकी भावनाको स्थापित करनेके लिए राज्य द्वारा छोटे पैमानेपर चलनेवाले ऐसे उद्योग-धंधोंको प्रोत्साहित किया जायगा जो व्यक्तियों द्वारा या सहयोगी संस्थाओं द्वारा सभीके समान हितकी दृष्टिसे चलाये जायेंगे। बड़े पैमानेपर सामूहिक रूपसे चलनेवाले सभी उद्योग-धंधोंको अन्तमें जाकर इस तरह चलाना होगा कि जिससे उनका अधिकार और आधिपत्य व्यक्तियोंके हाथसे निकलकर समष्टिके हाथमें आ जाय। इस लक्ष्यकी सिद्धिके लिए राज्य यातायातके भारी साधनों, व्यापारी जहाजों, खानों और दूसरे बड़े-बड़े उद्योग-धंधोंका राष्ट्रीयकरण शुरू कर देगा। वस्त्र-व्यवसायका प्रबन्ध इस तरह किया जायगा कि जिससे उत्तरोत्तर उसका केन्द्रीकरण रुके और विकेन्द्रीकरण बढ़े।

"गाँवोंके जीवनका पुनः संगठन किया जायगा, उन्हें स्वतंत्र स्वायत्त इकाई बनाया जायगा और जहाँतक संभव होगा अधिक-से-अधिक स्वावलंबी बनानेका यत्न किया जायगा। देशके जमीन सम्बन्धी कानूनोंमें जड़-मूलसे सुधार किया जायगा, और यह सुधार इस सिद्धान्तपर होगा कि जमीनका मालिक उसे जोतनेवाला ही हो सकता है। और हर एक काश्तकारके पास उसकी ही जमीन होनी चाहिए, जिससे वह अपने परिवारका उचित रीतिसे भरण-पोषण कर सके। इससे जहाँ एक ओर जमींदारीकी अनेक प्रथाएँ बन्द हो जायेंगी, वहाँ खेतोंमें गुलामीकी प्रथा भी नष्ट हो जायगी।

"राज्य वर्गोंके हितों या स्वार्थोंकी रक्षा करेगा, लेकिन जब ये स्वार्थ गरीबों या पददलितोंके स्वार्थमें बाधक होंगे तो राज्य गरीबों और पददलितोंके स्वार्थकी रक्षा करके सामाजिक न्यायकी तुलाको समतोल रखेगा।

"राज्य द्वारा चलाये जानेवाले राज्यके सभी उद्योग-धंधोंके प्रबन्धमें मजदूरोंको अपने चुने हुए प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार रहेगा और इस प्रबन्धमें उनका हिस्सा सरकारी प्रतिनिधियोंके बराबर होगा।

"देशी राज्योंमें सम्पूर्ण प्रजातंत्रात्मक सरकारें स्थापित होंगी और नागरिकोंकी समताके तथा सामाजिक भेदभावको मिटानेके सिद्धान्तके अनुसार राजाओं और नवाबोंके रूपमें देशी रियासतोंमें कोई नामधारी शासक नहीं रहेंगे।"

"कांग्रेस के सामने देशकी शासन-व्यवस्थाका यही चित्र है, और इसीको स्थापित करनेका वह यत्न करेगी। कांग्रेसका यह दृढ़ विश्वास है कि इस व्यवस्थाके कारण हिन्दुस्तानमें रहनेवाली सभी जातियों और धर्मोंके लोग सुखी, सम्पन्न और स्वतंत्र रहेंगे और इन तत्वोंकी नींवपर सब मिलकर एक महान् और गौरवशाली राष्ट्र निर्माण करेंगे।"

मुझे श्री जयप्रकाशका यह प्रस्ताव पसन्द आया और मैंने कार्य-समितिको उनका पत्र और प्रस्तावका यह मस्विदा पढ़कर सुनाया। लेकिन समितिने यह सोचा कि रामगढ़-कांग्रेसमें एक ही प्रस्ताव पास करनेकी बातपर डटे रहना जरूरी है, और पटनामें जो मूल प्रस्ताव पास हुआ था उसमें किसी प्रकारका परिवर्तन करना इष्ट नहीं है। समितिकी यह दलील निरपवाद थी; इसलिए प्रस्तुत प्रस्तावके गुण-दोषोंकी चर्चा किये बिना ही उसे छोड़ दिया गया। मैंने श्री जयप्रकाशको अपने प्रयत्नके परिणामसे सूचित कर दिया। उन्होंने मुझे लिखा कि इसके बाद आपको संतोष देनेवाली सबसे अच्छी बात यह होती कि मैं उनके इस प्रस्तावको अपनी पूरी, या जितनी मैं दे सकूँ उतनी, सहमतिके साथ प्रकाशित कर दूँ।

श्री जयप्रकाशकी इस इच्छाको पूरा करनेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं मालूम देती। एक ऐसे आदर्शके नाते, जिसे देशके स्वतंत्र होते ही हमें कार्य रूपमें परिणत करना है, श्री जयप्रकाशकी एक सूचनाको छोड़कर शेष सभी सूचनाओंका आमतौर पर समर्थन करता हूँ।

मेरा दावा है कि आज हिन्दुस्तानमें जो लोग समाजवादको अपना ध्येय मानते हैं, उनसे मैं बहुत पहले समाजवादको स्वीकार कर चुका था। लेकिन मेरा समाजवाद मेरे लिए सहज था, वह पुस्तकोंसे ग्रहण नहीं किया गया था। अहिंसामें मेरे अटल विश्वासका ही वह परिणाम था। कोई भी आदमी, जो सक्रिय अहिंसामें विश्वास करता है, सामाजिक अन्यायको, फिर वह कहीं भी क्यों न होता हो, बर्दाश्त नहीं कर सकता—वह उसका विरोध किये बिना नहीं रह सकता। जहाँतक मैं जानता हूँ, दुर्भाग्यवश पश्चिमके समाजवादियोंने यह मान लिया है कि अपने समाजवादी सिद्धान्तोंको वे हिंसा द्वारा ही अमलमें ला सकते हैं।

मैं सदासे यह मानता आया हूँ कि नीच-से-नीच और कमजोर-से-कमजोरके प्रति भी हम जोर जबर्दस्तीके जरिये सामाजिक न्यायका पालन नहीं कर सकते। मैं यह भी मानता आया हूँ कि पतित-से-पतित लोगोंको भी मुनासिब तालीम दी जाय तो अहिंसक साधनों द्वारा सब प्रकारके अत्याचारोंका प्रतिकार किया जा सकता है। अहिंसक असहयोग ही उसका मुख्य साधन है। कभी-कभी असहयोग भी उतना ही कर्त्तव्य रूप हो जाता है, जितना कि सहयोग। अपनी विफलता या गुलामीमें खुद सहायक होनेके लिए कोई बँधा हुआ नहीं है। जो स्वतंत्रता दूसरोंके प्रयत्नों द्वारा-फिर वे कितने ही उदार क्यों न हों—मिलती है, वह उन प्रयत्नोंके न रहनेपर कायम नहीं रक्खी जा सकती। दूसरे शब्दोंमें, ऐसी स्वतंत्रता सच्ची स्वतंत्रता नहीं है। लेकिन जब पतित-से-पतित भी अहिंसक असहयोग द्वारा अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करनेकी कला सीख लेते हैं, तो वे उसके प्रकाशका अनुभव किये बिना नहीं रह सकते।

इसलिए जब मैंने श्री जयप्रकाशके इस प्रस्तावको पढ़ा और देखा कि वे देशमें जिस किस्मकी

शासन-व्यवस्था कायम करना चाहते हैं, उसका आधार उन्होंने अहिंसाको ही माना है, तो मुझे खुशी हुई। मेरा यह पक्का विश्वास है कि जिस चीजको हिंसा कभी नहीं कर सकती, अहिंसात्मक असहयोग द्वारा सिद्ध की जा सकती है और उससे अंतमें जाकर अत्याचारियोंका हृदय-परिवर्तन भी हो सकता है। हमने हिन्दुस्तानमें अहिंसाको उसके अनुरूप मौका अभीतक दिया ही नहीं, फिर भी आश्चर्य है कि अपनी इस मिलावटी अहिंसा द्वारा भी हम इतनी शक्ति प्राप्त कर सके हैं।

जमीनके बारेमें श्री जयप्रकाशकी सूचनाएँ भड़कानेवाली हो सकती हैं; लेकिन वे दरअसल वैसी हैं नहीं। प्रतिष्ठित जीवनके लिए जितनी जमीनकी आवश्यकता है, उससे अधिक किसी आदमीके पास नहीं होनी चाहिए। ऐसा कौन है, जो आज इस हकीकतसे इन्कार कर सके कि आम जनताकी घोर गरीबीका मुख्य कारण आज यही है कि उसके पास उसकी अपनी कही जानेवाली कोई जमीन नहीं है?

लेकिन यह याद रखना चाहिए कि इस तरह के सुधार ताबड़तोड़ नहीं किये जा सकते। अगर ये सुधार अहिंसात्मक तरीकोंसे करने हैं, तो जमींदारों और गैरजमींदारों दोनोंको सुशिक्षित बनाना लाजिमी हो जाता है। जमींदारोंको यह विश्वास दिलाना होगा कि उनके साथ कभी जोर जबर्दस्ती नहीं की जायगी, और गैरजमींदारोंको यह सिखाना और समझाना होगा कि उनसे उनकी मर्जीके खिलाफ जबरन कोई काम नहीं ले सकता, और कष्ट-सहन या अहिंसाकी कलाको सीखकर वे अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं। अगर इस लक्ष्यको हमें प्राप्त करना है, तो ऊपर मैंने जिस शिक्षाका जिक्र किया है उसका आरम्भ अभीसे हो जाना चाहिए। इसके लिए पहली जरूरत ऐसे वातावरणको तैयार करने की है, जिसमें पारस्परिक आदर और सद्भावका सुमेल हो। उस अवस्थामें वर्गों और आम जनताके बीच किसी प्रकारका कोई हिंसात्मक संघर्ष हो नहीं सकता।

इसलिए यद्यपि अहिंसाकी दृष्टिसे श्री जयप्रकाशकी सूचनाओंका सामान्य समर्थन करनेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं मालूम होती, तो भी मैं राजाओं सम्बन्धी उनकी सूचनाका समर्थन नहीं कर सकता। कानूनकी दृष्टिसे वे स्वतंत्र हैं। यह सच है कि उनकी स्वतंत्रताका कोई विशेष मूल्य नहीं है, क्योंकि एक प्रबल शक्ति उनका संरक्षण करती है। लेकिन हमारे मुकाबिलेमें वे अपनी स्वतंत्रताका दावा कर सकते हैं। श्री जयप्रकाशकी प्रस्तावित सूचनाओंमें जो बातें कही गयी है, उनके अनुसार अगर अहिंसात्मक साधनों द्वारा हम स्वतंत्र हो जायँ, तो उस हालतमें मैं ऐसे किसी समझौतेकी कल्पना नहीं करता, जिसमें राजा लोग अपनेको खुद ही मिटानेको तैयार होंगे। समझौता किसी भी तरहका क्यों न हो, राष्ट्रको उसका पूरा-पूरा पालन करना ही होगा। इसलिए मैं तो सिर्फ ऐसे समझौतेकी ही कल्पना कर सकता हूँ जिसमें बड़ी-बड़ी रियासतें अपने दर्जेको कायम रखेंगी। एक तरहसे यह चीज आजकी स्थितिसे कहीं बढ़कर होगी, लेकिन दूसरी दृष्टिसे राजाओंकी सत्ता इतनी सीमित रह जायगी कि जिससे देशी रियासतों की प्रजाको अपनी रियासतोंमें स्वायत्त-शासनके वे ही अधिकार प्राप्त होंगे, जो हिन्दुस्तानके दूसरे हिस्सोंकी जनताको प्राप्त रहेंगे। उनको भाषण और लेखन व मुद्रणकी

स्वतंत्रता और शुद्ध न्याय निरपेक्ष रूपसे प्राप्त रहेगा। शायद श्री जयप्रकाशको यह विश्वास नहीं है कि राजा लोग स्वेच्छासे अपनी निरंकुशताका त्याग कर देंगे। मुझे यह विश्वास है। एक तो इसलिए कि वे भी हमारी ही तरह भले आदमी हैं, और दूसरे इसलिए कि शुद्ध अहिंसा की अमोघ शक्तिमें मेरा सम्पूर्ण विश्वास है। अतः अंतमें यह कहना चाहता हूँ कि क्या राजा-महाराजा और क्या दूसरे-सभी सच्चे और अनुकूल बन जायेंगे, जब हम खुद अपने प्रति अपनी श्रद्धाके प्रति-यदि हममें श्रद्धा है-और राष्ट्रके प्रति सच्चे बनेंगे। इस समय तो हम अध-कचरी हालतमें हैं। ऐसी अधकचरी श्रद्धासे स्वतंत्रताका मार्ग कभी नहीं मिल सकता। अहिंसाका आरम्भ और अंत आत्म-निरीक्षणमें होता है—"जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ।'

हरिजन सेवक
२० अप्रैल, १९४०

स्वतंत्र भारत और सत्याग्रह

अमेरिकासे लिखते हुए एक मित्र यह दो प्रश्न उपस्थित करते हैं:—

१—"यदि यह मान लिया जाय कि सत्याग्रहमें भारतकी स्वतंत्रता प्राप्त कर लेनेका सामर्थ्य है तब स्वतन्त्र भारतमें उसके राज्यकी नीतिके रूपमें स्वीकार कर लिये जानेकी क्या संभावनाएँ है ? दूसरे शब्दोंमें, क्या एक बलिष्ठ और स्वतंत्र भारत आत्मरक्षाके असली रूपमें सत्याग्रह पर निर्भर रहेगा, अथवा युगोंसे चली आनेवाली उसी यौद्धिक प्रथाका आश्रय लेगा, चाहे उसका रूप कितना ही आत्म-रक्षात्मक क्यों न हो ? इसीको विशुद्ध सैद्धान्तिक समस्याके रूपमें रखा जाय, तो क्या सत्याग्रह केवल ऐसे प्रबल युद्धके समय ही स्वीकार किया जायगा जब कि बलिदानकी भावना पूरे जोरपर काम कर रही हो, या वह ऐसी सर्वोपरि सत्ताके हथियारके रूपमें भी स्वीकार किया जा सकेगा, जिसको न तो बलिदानके सिद्धान्तपर काम करनेकी आवश्यकता है, और न जिसके पास इसकी गुंजाइश ही है ?"

२—"फर्ज कीजिए कि स्वतंत्र भारत सत्याग्रहको राज्यकी नीतिके रूपमें स्वीकार करता है, तब वह किसी बलिष्ठ राज्यके संभावित आक्रमणसे अपनी रक्षा किस प्रकार करेगा; इसीको सैद्धान्तिक समस्याके रूपमें रखा जाय तो सीमाप्रदेश पर हमला होनेकी दशामें आक्रमणकारी सेनाके मुकाबले सत्याग्रहके रूपमें क्या कार्र-वाईकी जायगी? और एक ऐसे सम्मिलित कार्यक्षेत्रके स्थापित होनसे पहले, जैसा आज राष्ट्रवादी हिन्दुस्तानियों और अंग्रेजी सरकारके बीचमें है, आक्रमणकारीका मुकाबला करनेका भी क्या तरीका हो सकेगा ? अथवा, सत्याग्रहियोंको अपनी कार्रवाई तबतक बंद कर देनी होगी, जबतक कि विरोधी मुल्क पर कब्जा न जमाले।"

निश्चय ही प्रश्न सैद्धान्तिक है। साथ ही, मैंने सत्याग्रहके सम्पूर्ण शास्त्रपर अधिकार प्राप्त

नहीं किया है। इसलिए वे असामयिक अर्थात् समयसे पहले भी हैं। परीक्षण अभी शुरू ही है। वह अभी आगे बढ़ी हुई अवस्थामें नहीं है। जिस तरहका यह परीक्षण है उसमें परीक्षणकर्त्ताका एक बारगी एक कदमके संबंधमें निश्चय हो जाना जरूरी है। सुदूरवर्ती दृश्य देखना उसका काम नहीं है। इसलिए मेरे उत्तर सर्वथा काल्पनिक ही हो सकते हैं।

जैसा कि मैं पहिले कह चुका हूँ, सच तो यह है कि स्वतंत्रता-प्राप्तिके अपने इस संग्राममें भी हम विशुद्ध अहिंसासे काम ले रहे हैं।

पहिले प्रश्नके उत्तरमें, अभी जहाँतक मैं देख पाता हूं, मुझे भय है कि सत्याग्रहको सिद्धान्तके रूपमें राज्यकी नीति मान लिये जानेकी संभावना बहुत कम है। और भारत जब स्वतंत्रता प्राप्त करनेके बाद अहिंसाको अपनी नीति नहीं मानता है, तब दूसरा प्रश्न निरर्थक हो जाता है।

लेकिन अहिंसाकी क्षमताके सम्बन्धमें मैं अपना व्यक्तिगत विचार प्रगट कर दूं। मेरा विश्वास है कि अगर जनताका बहुसंख्यक भाग अहिंसात्मक हो, तो राज्यका शासन-कार्य अहिंसाके आधारपर चलाया जा सकता है। जहाँतक मैं जानता हूं, भारत ही एक ऐसा देश है, जिसके ऐसा राज्य हो सकनेकी संभावना है। इसी विश्वासके आधारपर मैं अपना प्रयोग चला रहा हूँ। इसलिए अगर यह मान लिया जाय कि भारत विशुद्ध अहिंसाके जरिये स्वतंत्रता प्राप्त कर लेता है, तो उन्हीं साधनोंसे वह उसकी रक्षा भी कर सकता है। एक अहिंसात्मक व्यक्ति या समुदाय बाहरके आक्रमणोंकी कल्पना या तैयारी नहीं करता। इसके विपरीत ऐसा व्यक्ति या समुदाय यह दृढ़ विश्वास रखता है कि कोई भी उसकी शांतिमें विघ्न नहीं डालेगा। अगर कोई अकल्पित बात हुई तो अहिंसाके लिए दो मार्ग खुले हैं। एक, आक्रमणकारीका अधिकार हो जाने देना, किन्तु उसके साथ सहयोग न करना। इस प्रकार फर्ज कीजिए कि नीरोका आधुनिक प्रतिरूप भारतपर आक्रमण करे, तो राज्यके प्रतिनिधि उसे अन्दर आ जाने देंगे, लेकिन उससे कह देंगे कि जनतासे उसे किसी प्रकारकी सहायता नहीं मिलेगी। वह आत्मसमर्पणके बजाय मर जाना पसंद करेगी। दूसरा तरीका यह है कि जिन लोगोंने अहिंसाकी पद्धतिसे शिक्षा पायी है, उनके द्वारा अहिंसात्मक मुकाबला किया जाता है। वे निहत्थे ही आगे आकर आक्रमणकारीकी तोपोंकी खाद्य-सामग्री बनेंगे। दोनों ही बातोंकी तहमें यह विश्वास निहित है कि नीरोतकमें भी एक हृदय होता है। स्त्री-पुरुषोंके निरंतर झुण्ड-के-झुण्डमें आक्रमणकारीकी इच्छापर आत्मसमर्पण करनेके बजाय बिना किसी मुकाबलेके केवल मरते जानेका अकल्पित दृश्य अन्तमें आक्रमणकारी और उसकी सेनाके हृदयको पिघलाये बिना न रहेगा। व्यावहारिक दृष्टिसे बलपूर्वक मुकाबला करनेकी अपेक्षा संभवतः इसमें जनहानि अधिक नहीं होगी। और शस्त्रालयों तथा किलेबंदीपर किसी प्रकारका खर्च न होगा। लोगोंको मिली हुई अहिंसाकी शिक्षा उनकी नतिक उच्चताको इतना बढ़ा देगी, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस तरहके स्त्री-पुरुष व्यक्तिगतरूपसे सशस्त्र युद्धमें दिखायी जानेवाली वीरताकी अपेक्षा कहीं अधिक ऊंचे दर्जेकी वीरता दिखा सकते हैं। हर हालतमें बहादुरी मरनेमें है, मारनेमें नहीं। अंतमें अहिंसात्मक प्रतिरोधमें पराजय जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। मेरी कल्पनाका यह कोई जवाबमें जवाब नहीं है कि पहले कभी

ऐसा नहीं हुआ। मैंने कोई असंभव चित्र नहीं खींचा है। मेरे बताये हुए व्यक्तिगत अहिंसाके उदाहरणोंसे इतिहासके पन्ने-के-पन्ने भरे पड़े हैं। यह कहने या माननेके लिए कोई आधार नहीं है कि स्त्री-पुरुषोंके समूह पर्याप्त शिक्षाके बाद समष्टि या राष्ट्रके रूपमें अहिंसात्मक आचरण नहीं कर सकते। निश्चय ही मानव-समुदायके अबतक के अनुभवका सार यह है कि मनुष्य किसी न किसी तरह जीवित रहना चाहता है। इस तथ्यसे मैं यह नतीजा निकालता हूँ कि प्रेम ही वह कानून है जिससे कि मानव-समुदाय शासित होता है। हिंसा अर्थात् घृणाका साम्राज्य हुआ होता तो हम कभीके लोप हो गये होते। और फिर भी दुख की बात है कि सभ्य कहे जानेवाले पुरुष और राष्ट्र अपने आचरण इस प्रकारके रखते हैं मानों समाजका आधार हिंसा हो। प्रेम ही जीवनका श्रेष्ठ और एकमात्र कानून है, यह सिद्ध करनेके लिये प्रयोग करनेमें मुझे अकथनीय आनंद आता है। इसके विपरीत दिये जानेवाले अगणित उदाहरण मेरे इस विश्वासको नहीं हिला सकते। भारतकी मिश्रित अहिंसातकसे इसको समर्थन मिला है। लेकिन अगर किसी अविश्वासीको विश्वास करानेके लिए इतना काफी नहीं है, तो एक सुहृद समालोचकको इसपर सहानुभूतिपूर्वक विचार करनेके अर्थ प्रेरित करनेके लिए काफी है।

हरिजन सेवक
२० अप्रैल, १९४०

अहिंसा फिर किस कामकी ?

एक हिन्दुस्तानी मित्रके पत्रका सार नीचे दे रहा हूँ:—

"दिल दुखता है नार्वेकी दर्दभरी कहानी सुनकर। वे लोग हिम्मतसे लड़े तो सही, लेकिन अधिक बलवान दुश्मनके मुकाबलेमें हार बैठे। इससे हिंसाकी निरर्थकता साबित होती है। लेकिन क्या हम दुनियाकी समस्याको हल करनेके लिए कुछ अहिंसा सिखा रहे हैं? ब्रिटेनको परेशान करके क्या हम जर्मनीको उत्साहित नहीं कर रहे हैं? नार्वे और डेनमार्क हमारे रुखको कैसे ठीक समझ सकते हैं? उनके लिए हमारी अहिंसा किस कामकी। चीन और स्पेनको हमने जो इमदाद दी, उसके बारेमें भी वह गलतफहमी कर सकते हैं। आपने जो फर्क किया है वह केवल इसलिए कि एक साम्राज्यवादी ताकतको आप मदद नहीं देना चाहते, हालांकि वह एक अच्छे कामके लिए लड़ रही है। पिछली लड़ाईमें आपने भर्ती करवायी, लेकिन आज आपका ख्याल बिलकुल दूसरा है। फिर भी आप कहेंगे कि यह सब ठीक है। यह कैसे? मैं तो नहीं समझता हूँ।"

डेनमार्क और नार्वेके अत्यंत सुसंस्कृत और निर्दोष लोगोंकी किस्मतपर अफसोस करनेवालोंमें लेखक अकेले ही नहीं हैं। यह लड़ाई हिंसाकी निरर्थकता दिखला रही है। फर्क किया

जाय कि हिटलर मित्र-राज्योंपर विजय हासिल कर ले, तो भी वह ब्रिटेन और फ्रांसको हर्गिज गुलाम नहीं बना सकेगा। उसका अर्थ है दूसरी लड़ाई। और अगर मित्र-राज्य जीत जायं, तो भी दुनियांकी बेहतरी नहीं होगी। लड़ाईमें अहिंसाका सबक सीखे बिना और अहिंसाके जरिये जो फायदा उठाया है, उसे छोड़े बगैर वह अधिक शिष्ट भले ही हों, पर कुछ कम बेरहम नहीं होंगे। चारों ओर, जिन्दगीके हर पहलू में न्याय हो, यह अहिंसाकी पहली शर्त है। मनुष्यसे इतनी अपेक्षा करना शायद अधिक समझा जाय, लेकिन मैं ऐसा नहीं समझता। मनुष्य कहाँतक ऊँचा जा सकता है और कहाँतक गिर सकता है, इसका निर्णय हम नहीं कर सकते, पश्चिमके इन मुल्कोंको हिन्दुस्तानकी अहिंसाने कोई सहायता नहीं पहुंचायी है। इसका कारण यह है कि यह अहिंसा अभी खुद बहुत कमजोर है। उसकी अपूर्णता देखनेके लिए हम उतने दूर क्यों जायं? कांग्रेसकी अहिंसाकी नीतिके बावजूद हम अपने देशमें एक दूसरेके साथ लड़ रहे हैं। खुद कांग्रेस पर भी अविश्वास किया जा रहा है। जबतक कांग्रेस या उसके जैसा कोई और गिरोह सब लोगोंकी अहिंसा पेश न करे, दुनियामें इसका संचार हो नहीं सकता। स्पेन और चीनको जो मदद हिन्दुस्तानने दी, वह केवल नैतिक थी। माली सहायता तो उसका एक छोटा-सा रूप था। इन दोनों मुल्कोंके लिए जो अपनी आजादी रातों-रात खो बैठे, शायद ही कोई हिन्दुस्तानी हो जिसे उतनी ही हमदर्दी न हो। यद्यपि स्पेन और चीनसे उनका मामला जुदा है, उनका नाश चीन और स्पेनके मुकाबलेमें शायद ज्यादा मुकम्मिल है। दरअसल तो चीन और स्पेनके मामलेमें भी खास फर्क है। लेकिन जहाँतक हमदर्दीका सवाल है। उसमें कोई अन्तर नहीं आता है। बेचारे हिन्दुस्तानके पास इन मुल्कोंको भेजनेके लिए सिवाय अहिंसाके और कुछ नहीं है। लेकिन जैसा कि मैं कह चुका हूँ, यह अभी तक भेजनेके लायक चीज नहीं हुई है; वह ऐसी तब होगी, जब हिन्दुस्तान अहिंसाके जरिये आजादी हासिल कर लेगा।

अब रहा ब्रिटेन का मसला। कांग्रेसने उसे कोई परेशानीमें नहीं डाला है। मैं यह घोषित कर चुका हूँ कि मैं कोई ऐसा काम नहीं करूंगा जिससे उसे कोई परेशानी हो। अंग्रेज परेशान होंगे, अगर हिन्दुस्तानमें अराजकता होगी। कांग्रेस, जबतक मेरी बात मानेगी तबतक इसका समर्थन नहीं करेगी।

कांग्रेस जो नहीं कर सकती वह यह है; वह अपना नैतिक प्रभाव ब्रिटेनके पक्षमें नहीं डाल सकती। नैतिक प्रभाव मशीनकी तरह कभी नहीं दिया जा सकता। उसे लेना न लेना ब्रिटेनके ऊपर निर्भर करता है। शायद ब्रिटेनके राजनेता सोचते हैं कि ऐसा कौन नैतिक बल है जो कांग्रेस दे सकती है।

उनको नैतिक बलकी दरकार ही नहीं। शायद वह यह भी सोचते हैं कि इस लड़ाईमें फंसी हुई इस दुनियामें उन्हें किसी चीजकी जरूरत है तो वह माली सहायता है। अगर ऐसा वे सोचते हैं, तो ज्यादा गलती भी नहीं करते हैं। यह ठीक ही है, क्योंकि लड़ाईमें नीति नाजायज होती है। यह कहकर कि ब्रिटेनका हृदय-परिवर्तन करनेमें सफलताकी संभावना नहीं है, लेखकने ब्रिटेनके पक्षमें सारा मामला हार दिया। मैं ब्रिटेनकी बुराई नहीं चाहता। मुझे

दुख होगा, अगर उसकी हार हो। लेकिन जबतक वह हिन्दुस्तानका कब्जा न छोड़े, कांग्रेसका नैतिक बल ब्रिटेनके काम नहीं आ सकता। नैतिक प्रभाव तो अपनी अपरिवर्तित शर्त पर ही काम करता है।

जब मैंने खेड़ामें भर्ती की थी, तबकी और आजकी मेरी वृत्तिमें मेरे मित्रको कोई फर्क नजर नहीं आता। पिछली लड़ाईमें नैतिक प्रश्न नहीं उठाया गया था। कांग्रेसने अहिंसाकी प्रतिज्ञा उस वक्त नहीं ली थी। जो नैतिक प्रभाव उसका आम जनतापर आज है वह तब नहीं था। मैं जो करता था, निजी तौरसे करता था। मैं लड़ाईकी कान्फ्रेंसमें भी शरीक हुआ था, और वाचा पूरा करनेके लिए, अपनी सेहतको भी खतरेमें डालकर मैं भर्ती करता रहा। मैंने लोगोंसे कहा कि अगर उन्हें हथियारोंकी जरूरत हो, तो फौजी नौकरीके जरिये उन्हें जरूर प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन अगर वह मेरी भाँति अहिंसक हो तो मेरी भर्तीकी अपील उनके लिए नहीं थी। जहांतक मैं जानता था, मेरे दर्शकोंमें एक भी आदमी अहिंसाको माननेवाला नहीं था। उनकी भर्ती होनेकी अनिच्छाका कारण यह था कि उनके दिलोंमें ब्रिटेनके लिए वैर-भाव था। लेकिन ब्रिटेन की हुकूमतको खत्म करनेका एक जाग्रत निश्चय धीरे-धीरे इस वैर-भावका स्थान ले रहा था।

तबसे हालात बदल चुके हैं। पिछली लड़ाईमें हिन्दुस्तानकी ओरसे सार्वजनिक सहायता मिलनेके बावजूद ब्रिटेनकी वृत्ति रौलट ऐक्ट और ऐसे ही रूपोंमें प्रकट हुई। अंग्रेजरूपी खतरेका मुकाबला करनेके लिए कांग्रेसने असहयोगको स्वीकार किया। जलियानवाला बाग, साइमन कमीशन, गोलमेज कांफ्रेंस और थोड़े-से लोगोंकी शरारतके लिए सारे बंगालको कुचलना, यह सब बातें उसकी यादगार हैं।

जब कि कांग्रेसने अहिंसाकी नीतिको स्वीकार कर लिया है, मेरे लिए आवश्यक नहीं कि मैं भर्तीके लिए लोगोंके पास जाऊं। कांग्रेसके जरिये मैं थोड़े-से रंगरूटोंकी अपेक्षा बहुत ही बेहतर सहायता दे सकता हूँ, लेकिन यह जाहिर है कि ब्रिटेनको उसकी जरूरत नहीं। मैं तो चाहता हूँ, पर लाचार हूँ।

हरिजन-सेवक
४ मई, १९४०

❀

निर्णय कौन करे ?

(नीचे लिखी मुलाकात अमेरिकाके 'न्यूयार्क-टाइम्स' पत्रके प्रतिनिधिसे गांधीजीकी हुई थी—अमृतकौर)

प्रश्न—ब्रिटेनकी तरफसे, मैंने सुना है, यह कहा गया है कि, "इस युद्धके अन्तमें दुनियाकी पुनः रचना किस प्रकार की होगी, यह हम कह नहीं सकते। भारतके प्रश्नको दुनियाके प्रश्नोंसे अलग नहीं किया जा सकता। यदि जर्मनीकी जीत होती है तो औपनिवेशिक दर्जा, पूर्ण स्वतंत्रता आदि शब्दोंके अर्थ तब शायद बहुत भिन्न हों, अथवा कुछ भी न रहें। तो फिर भारत वेस्टमिनिस्टर-स्टेच्यूटके औपनिवेशिक दर्जेको आज स्वीकार कर ले और शान्ति-परिषदके समय अवसरसे लाभ उठाये, तो इसमें क्या बुराई है ? वर्तमान परिस्थितियोंमें औपनिवेशिक दर्जा ही ज्यादा-से-ज्यादा भारतको हम दे सकते हैं।" आपने खुद यह कहा है कि, "ब्रिटेन और फ्रांस अगर हार जाते हैं, तो उस स्थितिमें भारतकी आजादीका क्या मूल्य ?" क्या इन मुद्दोंपर आप अधिक प्रकाश डालेंगे ?

उत्तर—भारतका कानूनी दर्जा—फिर वह औपनिवेशिक दर्जा हो या जो भी हो—लड़ाईकी समाप्तिके बाद ही आ सकता है। हालमें निर्णय करनेका प्रश्न यह नहीं है कि फिलहाल भारत औपनिवेशिक दर्जेसे संतोष मान ले। इस वक्त तो इतना ही प्रश्न है कि ब्रिटिश नीति आखिर क्या है ? क्या ग्रेट ब्रिटेन अब भी यह मानता है कि भारतका दर्जा निश्चित करनेका केवल उसका ही एक मात्र अधिकार है, या यह निर्णय करनेका एकमात्र अधिकार भारतका है ? यह प्रश्न अगर न उठाया गया होता, तो आज जो चर्चा उठी है वह न उठती। यदि वह उठी है—और उसे उठानेका भारतको हक था—तो इस स्थितिमें मेरा जो कुछ वजन है उसे कॉंग्रेसकी तरफ डालना मेरा फर्ज था। यह होते हुए, वायसरायसे अपनी पहली मुलाकातके बाद, मैंने खुद अपनेसे जो प्रश्न पूछा था उसे आज भी मैं पूछ सकता हूँ कि 'ब्रिटेन और फ्रांस अगर हार जाते हैं, तो भारतकी आजादीका क्या मूल्य ?" ये महान् राष्ट्र हार जायें तो यूरोप और दुनियाका इतिहास कैसा लिखा जायगा, यह कोई पहलेसे नहीं बता सकता। अतः मेरा प्रश्न स्वतंत्र दृष्टिसे भी महत्त्वका है। इस चर्चाका प्रस्तुत मुद्दा तो यह है कि भारतके संबन्धमें न्यायका आचरण करके ब्रिटेन मित्रराष्ट्रोंकी जीतका यकीन करा सकता है, क्योंकि फिर सारे संसारका सुशिक्षित लोकमत इस बातका साक्ष्य देगा कि उनका पक्ष न्यायसंगत है।

प्रश्न—फिलहाल भारतको अलग रखकर १५ गोरी प्रजासत्ताओंका एक संघ-तंत्र बनानेसंबन्धी मि० स्ट्रेटकी योजनाके बारेमें, अथवा यूरोपके राष्ट्रों तथा ब्रिटिश प्रजासमूह (इसमें भी भारतको तो बाहर ही रखा गया है) का एक संघतंत्र बनानेकी दरख्वास्तके बारेमें आपने कुछ राय

स्थिर की है ? रंगीन जातियोंका गोरों द्वारा जो शोषण हो रहा है उसे रोकनेके लिए इतने विशाल संघ-तंत्र मे दाखिल होनेकी क्या आप भारतको सलाह देंगे ?"

उत्तर—दुनियाके तमाम राष्ट्रोंका एक विश्वव्यापी संघ-तंत्र बनता हो तो मैं उसका अवश्य स्वागत करूंगा। सिर्फ पश्चिमके राष्ट्रोंका संघ-तंत्र तो एक अपवित्र संगठन होगा और मानव-जातिके लिए वह भय सिद्ध होगा । मेरी रायके अनुसार तो भारतको अलग रखकर किसी भी संघ-तंत्रकी कल्पना करना अब असंभव है। भारत इस स्थितिसे गुजर चुका है कि उसकी उपेक्षा करके दुनियाकी किसी भी व्यवस्थाका विचार किया जा सके।

प्रश्न—आपने अपने जीवनकालमें युद्ध द्वारा इतना बड़ा संहार और सर्वनाश देखा है जितना बड़ा दुनियाके इतिहासमें पहले कभी देखनेमे नहीं आया । और इतने पर भी आप अब भी अहिंसाको ही नयी संस्कृतिका आधार रूप मानते है ? क्या आपको यह विश्वास है कि आपके देशवासी इसे बिना किसी पसंगीके स्वीकार करते हैं ? आप बारबार इस बातपर जोर देते हैं कि सविनय-भंग शुरू करनेसे पहले आपकी शर्तोंका पूरा-पूरा पालन होना चाहिए। क्या अब भी आप अपनी उन शर्तोंसे चिपटे हुए हैं ?

उत्तर—आपकी यह बात सही है कि दुनियामें आज ऐसा भीषण संहार जारी है जैसा कभी सुननेमें नहीं आया। मगर अहिंसा विषयक मेरी श्रद्धाकी परीक्षाकी भी यही सच्ची घड़ी है। मेरे आलोचकोंको भले ही विचित्र मालूम दे, फिर भी मैं यह कहूंगा कि अहिंसा विषयक मेरी श्रद्धा-ज्योति अखंड रीतिसे आज भी वैसी ही प्रज्वलित है। अपने जीवन-कालमें अहिंसाको जितने अंशोंमें मैं देखना चाहता हूँ उतने अंशोंमें उसका दर्शन कदाचित् न हो। पर यह जुदा प्रश्न है। इससे मेरी श्रद्धा विचलित नहीं हो सकती। और इसीलिए सविनय-भंग शुरू करनेसे पहिले अपनी शर्तोंका पूरा पूरा पालन करानेके विषयमें मैं जरा भी झुकनेको तैयार नहीं। क्योंकि सारे संसारका उपहास-पात्र बननेका जोखिम उठाकर भी मैं अपनी इस मान्यताको छोड़ने वाला नहीं कि भारतके बारेमें तो अहिंसा और चर्खेके बीच निश्चय ही अटूट संबन्ध है। जिस तरह ऐसे चिन्ह या लक्षण है कि जिनके द्वारा आप नग्न आँखोंसे हिंसाको पहचान सकते हैं, उसी तरह चर्खा मेरे लिए अहिंसाका एक अचूक प्रतीक है। चाहे जो हो, अपनी श्रद्धापर अटल रहकर उसकी सिद्धिके लिए खप जानेमें मुझे कोई भी चीज नहीं रोक सकती। भारतके सामने आज जो अनेक पेचीदी समस्याएं उपस्थित हैं, उन्हें हल करनेके लिए दूसरा कोई तरीका मेरे पास नहीं है ।

प्रश्न—भारत अपनी इच्छानुसार अपना राज्य-तंत्र चलाये, आप यह घोषणा करना चाहते हैं। आप यह भी कहते हैं कि "यह हो सकता है कि श्रेष्ठ पंक्तिके अंग्रेज और भारतवासी इकट्ठे होकर बैठ जायें और तबतक उठनेका नाम न लें जबतक कि ऐसा फार्मूला न बनालें जो कि दोनोंको स्वीकार हो। अंग्रेज कहते हैं कि "रक्षाके कार्यमें, व्यापारिक स्वार्थोंमें और देशी राज्योंमें हमारे पक्के हित संबन्ध रहे हैं।" जैसा कि आप कहते हैं, श्रेष्ठ पंक्तिके अंग्रेजों और श्रेष्ठ पंक्तिके भारतीयोंको इस संबन्धमें मैत्रीपूर्ण देन-लेनकी भावनासे (१९२२के एंग्लो-ईजिप्ट संधिमें इस भाषाका प्रयोग किया गया था) काम करने देनेके लिए क्या आप राजी हैं ?

उत्तर—अगर श्रेष्ठ पंक्तिके अंग्रेज और श्रेष्ठपंक्तिके भारतवासी जबतक किसी समझौतेपर न पहुंचे, तबतकके लिए अलहदा न होने के पक्के इरादेसे मिलकर बैठ जांय, तो मेरी कल्पनाके अनुसार लोकप्रतिनिधि-सभा बुलानेका कोई रास्ता जरूर निकल आयगा। अलबत्ता, ध्येयके सम्बन्धमें तो इस मिश्र जमातको एक रायका होना ही चाहिए। अगर इसी बातपर अनिश्चय हो तब तो उससे सिवा वितंडावादके और कुछ हासिल होनेका नहीं। इसलिए ऐसा मंडल यदि विचार करनेके लिए बैठे, तो आत्म-निर्णयका सिद्धान्त उसमें आरंभसे ही सबको मान्य होना चाहिए।

प्रश्न—मान लीजिये कि भारत आपके जीवनकालमें स्वतंत्र हो जाय फिर अपना शेष जीवन आप किस काममें बितायेंगे ?

उत्तर—यदि भारत मेरे जीवन-कालमें स्वतंत्र हो जाय और मुझमें शक्ति शेष रहे तो मैं तो शासन-जगतसे बाहर रहकर चुस्त अहिंसाके आधारपर राष्ट्र-निर्माणके काममें अपना उचित हिस्सा लूं।

हरिजन सेवक
४ मई, १९४०

प्रजातंत्र और अहिंसा

प्रश्न—एक अमेरिकन मित्रने पूछा है, 'आप ऐसा क्यों कहते हैं कि प्रजातंत्रको यदि कोई चीज बचा सकती है, तो केवल अहिंसा ही बचा सकती है ?'

उत्तर—क्योंकि जबतक प्रजातंत्रका आधार हिंसापर है, वह दीन-दुर्बलोंकी रक्षा नहीं कर सकता। दुर्बलोंके लिए ऐसे राजतंत्रमें कोई स्थान नहीं है। प्रजातंत्रका अर्थ मैं भी समझा हूँ कि इस तंत्रमें नीचे-से-नीचे और ऊँचे-से-ऊँचे आदमीको आगे बढ़नेका समान अवसर मिलना चाहिए, लेकिन सिवा अहिंसाके ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। संसारमें कोई देश ऐसा नहीं, जहाँ कमजोरोंके हककी रक्षा बतौर फर्जके होती हो। अगर गरीबोंके लिए कुछ किया भी जाता है तो वह मेहरबानीके तौरपर किया जाता है। आपलोगोंमें तो कहावत ही है कि 'कमजोरको तो मरना ही है'। अमेरिकाको ही देखो। आपकी सारी जमीन चंद जमींदारोंके कब्जेमें है। इन बड़ी बड़ी जायदादों की रक्षा गुप्त या प्रकट हिंसाके बिना हो नहीं सकती। पश्चिमका आजका प्रजातंत्र जरा हलके रंगका नाजी और फासिज्म-तंत्र ही है। ज्यादा-से-ज्यादा प्रजातंत्र, साम्राज्यवादकी नाजी और फैसिस्ट चालको ढंकनेके लिए

एक आडम्बर है। आज युद्ध क्यों हो रहा है? क्योंकि जर्मनी भी लूटमे हिस्सा लेना चाहता है? जिस तरहसे ब्रिटेन हिन्दुस्तानको हड़पकर गया, वह क्या प्रजातंत्रका ढंग था? दक्षिण अफ्रीकामें प्रजातंत्र क्या अर्थ रखता है? वहांका तंत्र गढ़ ही गया है देशके असल मालिक काले हबशियोंके विरुद्ध गोरोंकी रक्षा करनेके लिए। उत्तर अमेरिकाने गुलामीकी प्रथाको नष्ट करनेके लिए जो काम किया उसके बावजूद, आपलोगोंका इतिहास तो इससे भी काला है। आपलोगोंने अमेरिकाके हबशियोंके साथ जो सलूक किया है वह एक शर्मनाक किस्सा है। यह है आपका प्रजातंत्र, जिसे बचानेके लिए यह युद्ध लड़ा जा रहा है। इसमें भारी दंभकी बू आती है। इस समय मैं अहिंसाकी परिभाषामे बात कर रहा हूँ, और हिंसाका नंगा स्वरूप दिखा रहा हूँ। हिन्दुस्तान सच्चा प्रजातंत्र बननेका प्रयत्न कर रहा है, ऐसा प्रजातंत्र जिसमें हिंसाके लिए कोई स्थान न होगा। हमारा हथियार सत्याग्रह है। उसका व्यक्त स्वरूप है चर्खा, ग्राम-उद्योग संघ, उद्योगके जरिये प्राथमिक शिक्षा-प्रणाली, अस्पृश्यता-निवारण, मद्य-निषेध और अहिंसक तरीकेसे मजदूरोंका संगठन, जैसा कि अहमदाबादमें हो रहा है, और साम्प्रदायिक-ऐक्य। इस कार्यक्रमके लिए जनताको सामुदायिक रूपमें प्रयत्न करना पड़ता है, और सामुदायिक रूपसे जनताको शिक्षण भी मिल जाता है। इन प्रवृत्तियोंको चलानेके लिए हमारे पास बड़े बड़े संघ हैं, पर कार्यकर्त्ता पूरी तरह स्वेच्छासे इस काममें आये हैं। उनके पीछे अगर कोई शक्ति है, तो वह उनकी अत्यन्त दीन-दुर्बलोंकी सेवा-भावना है। यह तो हुआ अहिंसक युद्धका स्थायी भाग। इसमें से अहिंसक तरीकेसे सत्ताका सामना करनेकी शक्ति पैदा होती है। यह सामना सविनय भंग और असहयोग कहलाता है। असहयोगका अंतिम रूप कर देनेसे इन्कार करना है। आप जानते हैं कि हमने काफी बड़े पैमानेपर सविनय-भंग और असहयोगका प्रयोग किया है। उसमें सफलता भी हमें काफी मिली है। यह प्रयोग एक ऊंचे भविष्यकी आशा दिलाता है। आजतक हमारी लड़ाई कमजोरकी लड़ाई रही है। पर हमारा उद्देश्य बलवानकी अहिंसक लड़ाईकी शक्ति प्राप्त करनेका है। आपके ये युद्ध प्रजातंत्रको कभी सुरक्षित नहीं बना सकेंगे। पर यदि भारतीय इतना आगे बढ़ सकें, या यूं कहो कि ईश्वरने मुझे इस प्रयोगको सफल बनानेके लिए आवश्यक शक्ति और बुद्धि दी, तो भारतका प्रयोग प्रजातंत्रको सुरक्षित बना सकेगा।

हरिजन-सेवक
१८ मई, १९४०

हमारा कर्त्तव्य

"नाजी जर्मनी द्वारा किये जानेवाले इधरके और भी क्रूरतापूर्ण हमलोंका ख्याल रखते हुए और इस वाकयाको आँखोंके सामने रखते हुए कि ब्रिटेन आज मुसीबतमें पड़ गया है और चारों ओर आपदाओंसे घिरा हुआ है, क्या अहिंसाका यह तकाजा नहीं है कि हम उससे कह दें कि यद्यपि हम अपनी स्थितिमें जरा भी नहीं हट रहे हैं और जहा तक उसके साथ हमारे ताल्लुकात और हमारे भविष्यका सम्बन्ध है, हम अपनी मांगमें तिलभर कभी न करेंगे, फिर भी मुसीबतोंसे घिरे होनेकी हालतमें उसे तंग या व्यग्र करनेकी हमारी इच्छा नहीं है, इसलिए फिलहाल सत्याग्रह आन्दोलनके विषयमें सारे ख्यालात और सब तरहकी बातें हम निश्चितरूपसे मुलतवी कर देते हैं। आज नाजीवाद स्पष्टत: जैसे प्रभुत्वके लिए उठ रहा है, क्या हमारा मन उसकी कल्पनाके खिलाफ विद्रोह नहीं करता है? क्या मानवीय सभ्यताका सम्पूर्ण भविष्य खतरेमें नहीं है? यह ठीक है कि विदेशी शासनसे अपनेको स्वतंत्र करना भी हमारे लिए जिन्दगी और मौतका ही सवाल है। लेकिन जब ब्रिटेन एक ऐसे आक्रमणकारीके मुकाबले खड़ा है, जो निश्चितरूपसे जंगली उपायोंका इस्तेमालकर रहा है, तब क्या हमें ऐसी समयोचित और मानवीय भाव-भंगी न ग्रहण करनी चाहिए जो अंतमें हमारे विरोधीके दिलको जीत ले? फिर अगर इसका उसपर कुछ असर न हो और इज्जत आबरूके साथ कोई समझौता नामुमकिन ही बना रहे, तो भी क्या हमारे लिए यह एक ज्यादा ऊँची और श्रेष्ठ बात न होगी कि हम अहिंसात्मक युद्ध तब छेड़ें, जब वह (ब्रिटेन) आजकी तरह चारों तरफसे मुसीबतोंसे घिरा न हो? क्या इसके लिए हमें अपने अन्दर और ज्यादा ताकतकी जरूरत न पड़ेगी? और चूंकि ज्यादा ताकतकी जरूरत पड़ेगी, इसलिए क्या इसका अर्थ अधिक और ज्यादा टिकाऊ लाभ नहीं होगा और क्या यह आपसमें सिर फोड़नेवाली दुनियाके लिए एक ऊंचा उदाहरण न होगा? क्या यह इस बातका भी प्रमाण नहीं होगा कि अहिंसा प्रधानतया बलवानोंका अस्त्र है?"

नार्वेके पतनके बाद कई पत्र-लेखकोंके जो पत्र मुझे प्राप्त हुए हैं उनकी भावना इस पत्रमें कदाचित ठीक ठीक जाहिर हुई है। यह इन पत्र-लेखकोंके दिलोंकी शराफतका सबूत है। पर इसमें वस्तुस्थितिके प्रति ठीक समझका अभाव है। इन पत्रोंमें ब्रिटिश प्रकृतिका ख्याल नहीं किया गया है। ब्रिटिश जातिको गुलाम जातिकी हमदर्दीकी कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि वह इस गुलाम जातिसे जो कुछ चाहे ले सकती है। वह वीर और स्वाभिमान जाति है। नार्वे जैसी एक नहीं अनेक विघ्न बाधाओंसे भी वह लोग पस्त-हिम्मत होनेवाली नहीं है। अपने आगे आनेवाली किसी भी दिक्कतका सामना करनेमें वे भली-भाँति समर्थ हैं। युद्धमें भारतको किस तरह क्या हिस्सा लेना है इस बारेमें उसको खुद कुछ कहनेका हक नहीं है। उसे तो ब्रिटिश मंत्रिमंडल की इच्छामात्रसे इस युद्धमें अपनेको घसीटना पड़ा है। उसके साधनोंका ब्रिटिश मंत्रिमंडलकी इच्छानुसार इस्तेमाल किया जा रहा है। हम शिकायत नहीं कर सकते। हिन्दुस्तान एक पराधीन देश है और ब्रिटेन इस पराधीन देशको उसी तरह दुहता

रहेगा जिस तरह अतीत कालमें दुहता रहा है। ऐसी स्थितिमें काँग्रेस क्या भाव-भंगी, क्या रुख अख्तियार कर सकती है ? उसके वशमें जो सबसे ऊंची भाव-भंगी थी उसे वह अब भी ग्रहण किये हुए है। वह देशमें कोई फिसाद खड़ा नहीं करती है। खुद अपनी ही नीतिके कारण वह इससे बच रही है। मैं कह चुका हूँ और फिर दुहराता हूँ कि मैं हठवश ब्रिटेनको तंग करनेके लिए कोई काम नहीं करूंगा। ऐसा करना सत्याग्रहकी मेरी धारणाके प्रतिकूल होगा। इसके आगे जाना काँग्रेसकी ताकतके बाहर है।

निस्सन्देह, काँग्रेसका फर्ज है कि स्वतंत्रताकी अपनी माँगका अनुसरण करे और अपनी शक्तिकी पूरी सीमातक सत्याग्रहकी तैयारी जारी रक्खे। इस तैयारीकी खासियतका ध्यान करना चाहिए। खादी, ग्रामोद्योगों और साम्प्रदायिक एकताको बढ़ाना, अस्पृश्यताका निवारण, मादक-द्रव्य-निषेध तथा इस उद्देश्यसे काँग्रेस सदस्य बनाना और उनको ट्रेनिंग देना। क्या इस तैयारी को मुल्तवी कर देना चाहिए ? मैं तो कहूंगा कि अगर काँग्रेस सचमुच अहिंसात्मक बन गई और अहिंसाकी नीतिके पालनमें उसने ऊपर बताए हुए रचनात्मक कार्यक्रमको सफलतापूर्वक निबाह लिया, तो निस्सन्देह वह स्वतंत्रता प्राप्त कर सकेगी। तभी हिन्दुस्तानके लिए अवसर होगा कि वह एक स्वतंत्र राष्ट्रकी हैसियतसे यह फैसला करे कि उसे ब्रिटेनको कौनसी मदद किस तरह देनी चाहिए।

जहाँतक मित्र राष्ट्रोंका हेतु संसारके लिए शुभ है वहाँतक उसमें काँग्रेसकी देन यह है कि वह अहिंसा और सत्यका अमली तौरपर पालन कर रही है और बिना कमी व विलंब किये पूर्ण स्वतंत्रताके अपने ध्येयका अनुसरण कर रही है।

'काँग्रेसकी स्थितिकी परीक्षा करने और उसकी न्याय्यताको स्वीकार करनेसे आग्रहपूर्वक इनकार करके और गलत सवाल खड़े करके ब्रिटेन असलमें खुद अपने ही हेतुको नुकसान पहुंचा रहा है। मैंने जिस तरहकी विधान-परिषदका प्रस्ताव किया है उसमें एकके अलावा और सब दिक्कतें हल हो जाती हैं—बशर्ते कि इस एकको भी दिक्कत मान लिया जाय। इस परिषदमें हिन्दुस्तानके भाग्यनिर्णयमें ब्रिटिश-हस्तक्षेपके लिए अलबत्ता कोई गुंजाइश नहीं है। अगर इसे एक दिक्कतकी शकलमें पेश किया जाय, तो काँग्रेसको तबतक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जबतक यह न मान लिया जाय कि यह न सिर्फ कोई दिक्कत नहीं है, बल्कि यह कि आत्म-निर्णय हिन्दुस्तानका निर्विवाद अधिकार है।

अच्छा होगा कि इस बारेमें एक न एक बहाना खड़ा करके सत्याग्रहकी घोषणा करनेमें मेरी अनिच्छाका दोषारोपण करते हुए जो पत्र मुझे मिले हैं उनका भी जिक्र मैं कर दूं। इन मित्रोंको जान लेना चाहिए कि अहिंसा-अस्त्रके सफल प्रदर्शनके लिए मैं उनसे ज्यादा चिन्तित हूँ। इस शोधके अनुगमनमें मैं ऐसा लगा हूँ कि अपनेको एक पलका विश्राम नहीं दे रहा हूँ। निरंतर मैं प्रकाशके लिए प्रार्थना कर रहा हूँ। लेकिन बाहरी दबावके कारण मैं सत्याग्रह छेड़नेमें जल्दबाजी नहीं कर सकता — ठीक वैसे, जैसे कि बाहरी दबावके कारण मैं उसको छोड़ नहीं सकता। मैं जानता हूँ कि यह मेरी सबसे बड़ी कसौटीकी घड़ी है। यह दर्शानेके लिए मेरे पास

बहुत ज्यादा सबूत हैं कि बहुतेरे कांग्रेस-कर्मियोंके हृदयमें काफी हिंसा भरी है और उनमें स्वार्थकी मात्रा भी बहुत ज्यादा है। अगर कांग्रेस कार्यकर्त्ता अहिंसाकी सच्ची भावनासे ओत-प्रोत होते, तो स्वतंत्रता हमें १९२१ में ही मिल गयी होती और हमारा इतिहास आज कुछ दूसरा ही लिखा गया होता। लेकिन मुझे शिकायत नहीं करनी चाहिए। जो औजार मेरे पास हैं उन्हींसे मुझे काम करना है। मैं इतना ही चाहता हूं कि कांग्रेसी लोग मेरी ऊपरसे दीख पड़ने वाली अक्रियताका कारण जान लें।

हरिजन-सेवक
२५ मई, १९४०

❀

सत्याग्रह अभी नहीं

पाठकोंको इसी अंकमें अन्यत्र डॉ० राममनोहर लोहियाका लेख पढ़नेको मिलेगा, जिसमें तुरंत सत्याग्रह छेड़ देनेकी दलील है। विश्व-शान्ति कायम करनेके लिए उन्होंने जो नुसखा बताया है मैं उसकी ताईद करता हूँ। अपने नुस्खेको स्वीकार करानेके लिए वह तुरंत सत्याग्रह छेड़वाना चाहते हैं। यहीं मेरा उनसे मतभेद है। अगर डॉ० लोहिया अहिंसाकी क्रिया-की मेरी धारणाको मानते हैं, तो वह तुरंत मान लेंगे कि सत्याग्रहके जरिये अंग्रेजोंको ठीक दिशामें प्रभावित करनेके लिए इस वक्त वातावरण नहीं है।

डॉ० लोहिया यह कबूल करते हैं कि ब्रिटिश सरकारको तंग नहीं करना चाहिए। मुझे भय है कि सविनय-अवज्ञाकी तरफ बढ़ाये गये किसी भी कदमसे उसको परेशानी जरूर होगी। अगर मैं अभी सविनय-अवज्ञा शुरू करता हूं, तो उसका सारा तात्पर्य ही नष्ट हो जायगा।

देश अगर स्पष्ट रूपसे अहिंसात्मक होता और उसमें पूर्ण अनुशासन होता, तो मैं बगैर किसी हिचकिचाहटके सत्याग्रह शुरू कर देता। पर दुर्भाग्यवश कांग्रेसके बाहर बहुतेरे ऐसे दल हैं जिनका न तो अहिंसा और न सत्याग्रहमें विश्वास है। खुद कांग्रेसके अन्दर भी अहिंसाकी क्षमताके विषयमें सब तरहके मत रखनेवाले लोग हैं। भारतकी रक्षाके लिए अहिंसाके प्रयोगमें विश्वास रखनेवाले कांग्रेसी तो अंगुलियोंपर गिने जा सकते हैं। यद्यपि हम लोगोंने अहिंसाकी तरफ काफी लंबे डग भरे हैं तो भी अभीतक हम ऐसी मंजिलपर नहीं पहुंचे हैं जहाँ कि हम अजेय होनेकी आशा कर सकें। इस वक्त कोई भी गलत कदम रखनेका नतीजा यह होगा कि कांग्रेसने जो महान् नैतिक प्रतिष्ठा प्राप्त की है उसका अंत हो जायगा। हम लोगोंने काफी तौरपर यह दिखा दिया है कि कांग्रेस साम्राज्यवादका साथ छोड़ चुकी है और वह आत्म-निर्णयके निर्बाध अधिकारसे कममें किसी तरह संतुष्ट न होगी।

अगर ब्रिटिश सरकार भारतको अपने-आप ही अपने विधान और मर्यादाका निर्णय करनेका अधिकार रखनेवाले स्वतंत्र देशके रूपमें घोषित नहीं करती, तो मेरा मत है कि मित्र-राष्ट्रोंके बीच हो रही लड़ाईकी गर्मी शांत हो जाने और भविष्यके अधिक स्पष्ट होनेतक हमें प्रतीक्षा करनी चाहिए। हम ब्रिटेनके विनाशसे अपनी स्वतंत्रता नही चाहते। यह अहिंसाका तरीका नहीं है।

लेकिन अगर सचमुच हममें ताकत है, तो उसका प्रदर्शन करनेके अनेक अवसर हमें मिलेंगे। चाहे कोई पक्ष विजयी हो, सुलह तो होगी ही। उस वक्त हम अपनी ताकतका असर डाल सकते हैं।

क्या हममें वह ताकत है? क्या आधुनिक सैनिक सामग्रीसे रहित होनेपर भारतके मनमें शांति है? क्या आक्रमणके खिलाफ अपनी रक्षामें असमर्थ होनेके कारण भारत अपनेको असहाय नहीं महसूस करता? क्या कांग्रेसवाले तक अपने आपको सुरक्षित अनुभव करते हैं? अथवा, क्या वे यह महसूस नहीं करते कि कम-से-कम अभी चंद सालोंतक हिन्दुस्तानको ब्रिटेन या किसी दूसरी शक्तिकी मददकी जरूरत पड़ेगी? अगर हमारी यह दुर्भाग्यपूर्ण दुर्दशा है, तब हम लड़ाईके बाद किसी सम्मानपूर्ण सुलह व विश्वव्यापी निःशस्त्रीकरण के काममें कोई प्रभावकारक योग देनेकी आशा कैसे कर सकते हैं? इसके पहिले कि हम पश्चिमके पूर्णतः शस्त्र-सज्जित राष्ट्रोंको प्रभावित करनेकी उम्मीद करें, हमें पहिले अपने ही देशमें शक्तिमानोंकी अहिंसाके सामर्थ्यका प्रदर्शन करना होगा।

लेकिन बहुत-से कांग्रेसी अहिंसाके साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। वे किसी भी तरह सविनय-अवज्ञा शुरू कर देनेकी बात सोचते हैं, जिससे उनका मतलब जेलोंको भर देना होता है। सत्याग्रहमें निहित महान् शक्तिकी यह बच्चों जैसी व्याख्या है। चाहे इससे लोगोंको उबकाई आये, मगर मैं बार बार दोहराता रहूंगा कि सच्चे रचनात्मक प्रयत्नके आधार बिना अथवा अपराधीके हृदयमें शुभ भावना पैदा किये बगैर जेल जाना हिंसा है, अतः सत्याग्रहमें यह मना है। मनुष्यकी बुद्धि अबतक जितने भी अस्त्रोंका निर्माण कर सकी है उन सबकी सम्मिलित शक्तिसे भी अहिंसा द्वारा उत्पन्न शक्ति कहीं बढ़-चढ़कर है। इसलिए सत्याग्रहमें अहिंसा ही प्रधान निर्णायक अंग है। भारतके इतिहासके इस अत्यन्त विषम क्षणमें मैं उस शक्तिसे खिलवाड़ नहीं करूंगा जिसकी प्रच्छन्न संभावनाओंकी खोज मैं नम्रतापूर्वक लगभग ५० वर्षोंसे कर रहा हूं। सौभाग्य-वश, अन्ततोगत्वा तो मैं अपनी शक्तिका सहारा लेनेके लिए खुद तो हूं ही। मुझसे कहा गया है कि लोग रातो-रात अहिंसात्मक नहीं बन जा सकते। मैंने कभी नहीं कहा कि बन सकते हैं। लेकिन मैंने इतना माना है कि अगर उनमें वैसा बननेकी दृढ़ इच्छा है तो उचित शिक्षणसे वे वैसे बन सकते हैं। जो लोग सत्याग्रह करना चाहें उनके लिए सक्रिय अहिंसा जरूरी है, लेकिन सत्याग्रहके अर्थ चुने गये लोगोंके साथ सहयोग करनेवालोंके लिए दृढ़ संकल्प और उचित शिक्षण काफी है। कांग्रेसने जो रचनात्मक कार्य निर्धारित कर दिया है वही उचित शिक्षण है। तैयारी हो जानेकी हालतमें शायद कांग्रेसकी देन सही तरीकेपर लड़ाई खत्म करनेकी दिशामें सबसे अधिक प्रभावकारी होगी।

यद्यपि हिन्दुस्तानके निःशस्त्रीकरणके मूलमें बलात्कार है, फिर भी अगर राष्ट्र उसे एक धर्मके रूपमें स्वेच्छापूर्वक अंगीकार करले और भारत घोषणा कर दे कि वह शस्त्रोंसे अपनी रक्षा नहीं करेगा, तो यूरोपकी स्थितिपर इसका ठोस असर हो सकता है। इसलिए जो लोग हिन्दुस्तानको अहिंसा द्वारा अपने भाग्यकी सिद्धि करते देखना चाहते हैं उन्हें सविनय-अवज्ञाका विचार किये बिना अपनी संपूर्ण शक्ति सच्चाईके साथ रचनात्मक कार्यक्रमकी पूर्तिमें लगा देनी चाहिए।

हरिजन-सेवक
१ जून, १९४०

※

असंगति

प्रश्न——हालमें ही आपने लिखा था——"सविनय-अवज्ञाके जरिए अंग्रेजोंको ठीक दिशामें प्रभावित करनेके लिए इस वक्त वातावरण नहीं है।" और उसी लेखमें आपने लिखा है, "देश अगर स्पष्टरूपसे अहिंसात्मक होता और उसमें पूर्ण अनुशासन होता, तो मैं बगैर किसी हिचकिचाहटके सत्याग्रह शुरू कर देता।" अब सवाल यह उठता है कि अगर कुछ समय बाद देश स्पष्टरूपसे अहिंसात्मक हो जाय, पर लड़ाई लम्बे अर्सेतक चलती रहे, तो क्या आप सविनय-अवज्ञा शुरू कर देंगे? अगर आप शुरू करते हैं तो क्या इससे अंग्रेज तंग न होंगे? अगर कांग्रेसके बाहरके दल अहिंसात्मक न होंगे, तो क्या आप सविनय-अवज्ञा आरम्भ करनेमें हिचकिचायेंगे?

उत्तर:——खुब समझ लेनेके लिए जो वाक्य छोड़ दिये गये हैं, उन्हें अगर आप मिलाकर पढ़ेंगे, तो आपको इसमें कोई असंगति न मालूम होगी। मौजूदा वातावरणका मतलब यह है कि जब अंग्रेजोंके घरोंकी सुरक्षा खतरेमें है तब किसी भी चीजको बर्दाश्त करनेके लिए अंगरेज तैयार नहीं हैं। इसका तात्पर्य हमारी बहुत अपूर्ण अहिंसा भी है। अगर हम पूरे तौरपर, अतः स्पष्ट रीतिसे अहिंसात्मक हों, तो उसका मतलब यह होगा कि खुद अंग्रेज हमारी अहिंसाको मान लेंगे। कोई भी विशुद्ध अहिंसात्मक कार्य उनको परेशान नहीं कर सकता। बल्कि सच्ची बात तो यह है कि अगर हमारी अहिंसा पूर्ण होती तो हममें आन्तरिक कलह न होता, कांग्रेसमें झगड़े न होते, गैर-कांग्रेसियोंके साथ हमारा कोई झगड़ा न होता। उस हालतमें तो सविनय-अवज्ञाके लिए कोई अवसर ही नहीं आता। इस आशयकी बातें अभी हालमें मैंने इन्हीं पृष्ठोंमें लिखी हैं। आपने जो वाक्य उद्धृत किये हैं उनमें भी उसी बातको मैंने दूसरे ढंगसे कहा है। क्योंकि किसी संयुक्त राष्ट्र द्वारा उठाये जानेवाले अहिंसात्मक कदममें बिना किसी कडुआहटके होनेवाली उसकी लक्ष्यसिद्धि स्वयं ही छिपी रहती है। इस लिए जिस क्षण मेरी कल्पनाकी अहिंसा स्थापित हो जायगी उसी क्षण लड़ाईके लिए मैं तैयार हो जाऊँगा, फिर चाहे अंग्रेज किसी

भी मुसीबतमें घिरे हों। और जब वह अहिंसा आयेगी तो वह न सिर्फ हिन्दुस्तानको बचायेगी बल्कि ब्रिटेन और फ्रांसको भी बचा लेगी। लेकिन आपके लिए यह कहना ज्यादा अच्छा होगा कि मैंने निरर्थक लिख मारा, क्योंकि मैं जानता था कि जिस दरजेकी अहिंसा मैं चाहता हूं वह मेरे जमानेमें आनेवाली नहीं है। मैं तो एक अटूट आशावादी हूं। कोई वैज्ञानिक दुर्बल हृदयसे अपने प्रयोग नहीं आरम्भ करता। मैं उन्हीं कोलम्बस और स्टीवेंसनके दलका हूं, जिन्होंने कि जबर्दस्त कठिनाइयोंके बीच भी, निराशामें भी अपनी आशा कायम रखी। चमत्कारोंका युग अभी खतम नहीं हुआ है। जबतक ईश्वर है ये चमत्कार होते रहेंगे। आपके दूसरे सवालका जवाब ऊपर आ गया है। निस्संदेह यहां जो चित्र मैंने दिया है उसमें गैर कांग्रेसी वर्गों द्वारा भी अहिंसाके ग्रहण कर लेनेकी कल्पना शामिल है। पर पहले हमें अपना कर्त्तव्य करना है। पहले कांग्रेसको अपना घर व्यवस्थित कर लेने दीजिए।

हरिजन-सेवक
१५ जून, १९४०

❀

अहिंसा और खादी

श्री रिचर्ड बी० ग्रेगका एक पत्र कुछ दिन पहले मैंने उद्धृत किया था। अब उन्होंने दूसरा पत्र भेजा है, जिसे मैं पाठकोंको भी बताना चाहता हूं:—

"पिछले हफ्ते अपने समाचारपत्रोंमें चार्ली एण्डरूजकी मृत्युकी खबर पढ़कर मुझे शोक हुआ। वह कितने प्यारे अच्छे आदमी थे। अपनी मृदुता, करुणा, वफादारी, स्नेह और प्रेममें शक्तिमान। उन्होंने दुनियाको बेहतर बनाया। हम उनका अभाव बहुत महसूस करेंगे, पर उनका महान् उदाहरण सदा जीवित रहेगा।

"जब पिछली मर्तबा मैंने आपको लिखा था उसके बादके इन सारे महीनोंमें अहिंसा और अहिंसात्मक विश्वास तथा मत-परिवर्तनके लिए अनुशासनकी समस्याओं और पाश्चात्य निरुक्तमें (पारिभाषिक शब्दोंमें) उनके तथा उनके हलका बयान किस प्रकार किया जा सकता है, इस सम्बन्धमें मुझमें बौद्धिक संघर्ष होता रहा है। मैं समझता हूं कि मैंने आपको लिखा था कि अपनी 'पावर ऑव नान-वायलेंस' (अहिंसाकी शक्ति) की पूर्तिके लिए सत्याग्रहके इन दो पक्षोंपर मैं एक पुस्तक लिख रहा हूं। मैं पढ़ता हूं और सोचता हूं, पढ़ता हूं और सोचता हूं। पिछले चन्द हफ्तोंमें सारी चीजके ढांचेको मैं कहीं अधिक स्पष्टताके साथ देखने लगा हूं। मेरी चेष्टा यह है कि पश्चिमी दुनियाको आपके सम्पूर्ण कार्यक्रमके औचित्य और व्यावहारिकताका अनुभव करा दूं।

"मुझे बड़ी खुशी हुई है कि पिछले कई महीनोंमें आपने बड़े जोरोंके साथ यह बात कही है कि सरकारके विरुद्ध सत्याग्रहकी आम लड़ाईमें आपका नेतृत्व पानेके लिए पहले कांग्रेसको सच्चाई

और वफादारीके साथ खादी-कार्यक्रमको अपनाना चाहिए। मुझे इसकी आवश्यकता स्फटिककी भांति स्पष्ट दिखायी दे रही है। आप बिलकुल ठीक कहते हैं।

"पर मामलेके इस पक्षको छोड़ दें, तो भी मैं देख रहा हूँ कि जब वर्तमान युद्ध खत्म हो जायगा तो सारे यूरोपको आपके खादी कार्यक्रमकी और बिना किताबोंके तरह-तरहकी दस्तकारियोंके जरिये शिक्षा देनेकी आपकी योजनाकी जरूरत पड़ेगी। इंगलैंड और यूरोपका मध्यवर्ग बहुत दरिद्र हो जायगा। यही बात संयुक्त राज्य अमेरिका पर भी, संभवतः यूरोप जैसी प्रबलताके साथ ही, घटित होगी; क्योंकि हमारे यहाँ भी तो आर्थिक दृष्टिसे १९१९से १९३४ तक वैसी ही महान अधोगति आ चुकी है जैसी कि यूरोपके किसी भी देशमें आयी थी। हिन्दुस्तानके खादी आन्दोलनने जो अनुभव और यांत्रिक अभिज्ञता प्राप्त की है वह युद्धके बादके वर्षोंमें अत्यन्त मूल्यवान सिद्ध होगी।

"युद्ध और उसकी सम्पूर्ण भयानकताओंके बावजूद, मैं अहिंसाके भविष्यके विषयमें आशासे पूर्ण हूँ। दुनियाके सारे इतिहासमें इससे पहले कभी अहिंसामें श्रद्धा रखनेवाले इतने आदमी नहीं हुए; मैं कुल तादाद और शेष जन-संख्याके अनुपात दोनों ही दृष्टियोंसे यह बात कह रहा हूँ। इसके पहले और कभी सब वर्गों, श्रेणियों, धर्मों और पेशोंमें यह विश्वास पाया नहीं गया था। इसके पहले कभी इतने प्रतिष्ठित राजनीतिज्ञोंने सच्चाई और स्पष्टताके साथ खुलेआम युद्ध और हिंसाकी गलती, निस्सारता और भयंकर परिणामोंका इजहार नहीं किया था। इसके पहले कभी इतने फौजी आदमी अपने तरीकेकी अंतिम प्रभावकारिता और उचितताके विषयमें इस कदर अनिश्चित नहीं थे।

"तमाम पिछले दो सालोंमें, और जबसे लड़ाई शुरू हुई तबसे तो बड़ी तेजीके साथ ब्रिटेन और अमेरिकाके संगठित शान्ति-आन्दोलनोंमें प्रगति हुई है। इसके पहले कभी उनका इतना विस्तार नहीं था। फिर यह केवल भावना नहीं है। समस्याके सम्पूर्ण पक्षोंके विषयमें काफी तेज और गहरा विचार लोग कर रहे हैं।

"ग्रेट ब्रिटेनमें लाजिमी सैनिक भर्तीका कानून जिनपर लागू होता था उनमें नौ मार्च तक २६,६८१ आदमी सरकारी तौर पर अन्तःकरणसे युद्धपर आपत्ति करनेवालोंकी सूचीमें लिखे जा चुके हैं, जब कि १९१४-१८के युद्धके सम्पूर्ण ४ वर्षोंमें केवल १६,००० ऐसे आदमी निकले थे। हालाँकि पहलेसे कोई बात निश्चितरूपमें नहीं कही जा सकती, फिर भी जो प्रमाण सामने हैं उनसे मालूम पड़ता है कि अगर संयुक्त राज्य भी युद्धमें घसीटा गया तो यहाँ भी युद्धके प्रति हार्दिक आपत्ति उठानेवालोंकी संख्यामें इसी प्रकार बहुत बड़ी वृद्धि होगी। पिछले सालके जूनसे इस सालके मार्च महीने तक ग्रेट ब्रिटेनमें लाजिमी सैनिक भर्तीके लिए जो ५ या ६ माँगें हुईं उनमें हार्दिक आपत्ति करनेवालोंकी तादाद १.६ सैकड़ासे लेकर २.२ सैकड़ा तक थी। अगर आप ख्याल करें कि सभी देशोंमें सचमुच प्रभावशाली या मुख्य सरकारी काम जनसंख्याके दो प्रतिशतसे ज्यादा आदमी नहीं करते, तो यह एक दिलचस्प तुलना होगी। फिर जब हम ब्रिटेनके शान्ति-आन्दोलनके नेताओंकी उच्च बौद्धिक मर्यादापर ध्यान देते हैं तो इस तुलनाका बल और भी बढ़ जाता है। और यद्यपि किसीको अपने देशके बारेमें शेखी न मारनी चाहिए, फिर भी

मैं कह सकता हूँ कि इस 'देशमें शांतिवादी' मूर्ख नहीं है। भले उनकी कीर्ति जगतव्यापी न हो। भविष्यके साथ इन तथ्योंका सम्बन्ध ऐतिहासिक सादृश्यमें निहित है।

"१९१४-१८के युद्धके बाद बहुतेरे शांतिवादी जो युद्धके समय बुरी तरह दंडित हुए थे, प्रतिष्ठित नेता बन गये। इसी बातके होनेकी फिर संभावना है।

"युद्धके बाद उसमें शरीक होनेवाले सभी राष्ट्रों तथा बहुतेरे तटस्थ राष्ट्रोंमें भी एक जोरदार शान्ति-आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। संभवतः फिर यह बात होगी। पिछली बारके आन्दोलनका अधिकांश केवल भावना-मूलक था। इसलिए जब कड़ी कसौटीपर उसकी परख की गयी, तो वह भंग हो गया। लेकिन तबसे बहुत अधिक मात्रामें और गहरा विचार इस दिशामें किया गया है और अब अहिंसामें विश्वास रखनेवाले लोग पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक स्पष्टताके साथ समस्याओं और अपनी कठिनाइयों और उन्हें हल करनेके संभव मार्गको समझने लगे हैं। भविष्यमें पहलेकी अपेक्षा वे कहीं ज्यादा असर डाल सकेंगे।

"इस लड़ाईके बाद घृणा और शंका शायद उससे ज्यादा गहरी और प्रबल होगी, जितनी कि पिछले महायुद्धके बाद हुई थी। लेकिन साथ ही ज्यादा ईमानदारी—अपने राष्ट्रकी पिछली भूलों और दोषोंको स्वीकार करनेकी ज्यादा तैयारी दिखायी पड़ेगी; पुरानी आदतोंको छोड़कर नये तरीकोंका प्रयोग करनेकी प्रवृत्ति भी अधिक होगी। सामूहिक जागरूकताकी वृद्धिके कारण अनन्त संघर्षके खतरोंके प्रति भी अधिक जानकारी होगी। कदाचित विप्लव और व्यवस्थाके बीच चुनावकी बहुत थोड़ी गुंजाइश हो, पर मैं यही विश्वास करना चाहता हूँ कि स्थायी व्यवस्थाके लिए मनुष्यकी जो आकांक्षा है वह उसके भय और घृणासे कुछ ज्यादा ही शक्तिमान् निकलेगी। यह कुछ ऐसा होगा जैसे किसी पागलखानेके सब अधिवासी पारस्परिक हिंसाके एक भयंकर विस्फोटके बाद, सुलह कर लेनेका निश्चय करें और अपने रोगकी चिकित्साके लिए एक सहकारी योजना बनालें।

"अगर यह सच है कि मनुष्यकी व्यवस्था और अपने जीवनके महत्त्वकी आकांक्षा भय और घृणासे बलवान है, तो एकमात्र जिस कार्यक्रमसे व्यवस्था और जीवनके महत्वकी स्थापना हो सकती है उसका मेरुदण्ड अहिंसा ही होगी। इसके कारण अहिंसामें जो लोग विश्वास रखते हैं उनके ऊपर एक बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है। यह (अहिंसा) उनसे महान् विचार, अनुशासन और सामाजिक आविष्कारकी आशा रखती है। आपके खादी-कार्यक्रमको मैं इनमेंसे एक महान् सामाजिक आविष्कार मानता हूँ। वर्धा-शिक्षा-योजना ऐसा दूसरा आविष्कार है।

"एक पत्रमें श्री जे० सी० कुमारप्पाको कुछ ऐसी बातोंके बारेमें लिख रहा हूँ, जिनपर अर्सेसे उनके साथ चर्चा करनेकी मेरी इच्छा रही है। इसमें चंद सुझाव हैं जिनके विषयमें अ० भा० ग्रामोद्योग संघ प्रयोग कर सकता है। इनमें एक सुझाव तो यह है कि नेप्थलीनकी कृमिनाशक गोलियोंसे भरी हुई मसहरीकी जालीकी छोटी-छोटी थैलियाँ गाँवोंके कुओंमें लटकायी जायँ। ये थैलियाँ पानीकी सतहसे गज भर या उससे ज्यादा ऊपर रहें। इन गोलियोंकी गन्धको मच्छर बहुत नापसन्द करते हैं और चूंकि यह गन्धहीन वायुसे कुछ भारी होता है इसलिए पानीके

तल पर कम्बलकी तरह फैला रहेगा और जलको दूषित किये या मच्छरोंको मारे बिना ही वह मच्छरोंको पानीमें अंडे देनेसे दूर रक्खेगा। गंध पानीमें नहीं समाती। इस तरह मलेरियाके कीटाणुओंकी पैदाइशको एक सस्ते,आसान और निर्दोष उपायसे रोका जा सकता है। मेरे बागमें एक छोटा खुला फौलादका बना कुंड है। उसमें प्रयोग करने पर यह उपाय कारगर साबित हुआ है। मेरा ख्याल है कि इन गोलियोंको अहमदाबादके बाजारमें मैंने बिकते देखा था इसलिए मैं मान लेता हूँ कि वे सुलभ हैं। पर अगर वे सुलभ न हों,तो भी कुछ तीव्र गन्धवाली बूटियाँ ऐसी मिल सकती हैं जो मच्छरोंको भगानेके लिए वैसी ही काममें आ सकती हैं। गोलियोंकी जगह इनका प्रयोग किया जा सकता है। कृमिनाशक गोलियाँ कुछ समयके बाद हवामें उड़ जाती हैं, इसलिए उनपर ध्यान रखना और समय-समयपर थैलियोंमें नई गोलियाँ डालते रहना पड़ेगा।

"इसी धारणा पर दूसरी तरहसे भी अमल किया जा सकता है और वह यह कि गाँवके तालाबों या नदियोंके तटोंपर कुछ विशेष जलप्रिय तीव्र गन्धवाली वनस्पतियाँ लगा दी जायं। ये वनस्पतियाँ पानीके बिलकुल पास होंगी। ज्यादातर मच्छर अपने अंडे छिछले पानीपर देते हैं, इसलिए कीटडिंभ छोटी मछलियोंका खाद्य बननेसे बच जा सकते हैं। अगर सही वनस्पतियाँ चुनी जायँ—वे, जिनकी गन्ध मच्छड़ोंको दूर भगानेवाली होती हैं—और इन स्थानोंमें रोपकर उगाई जायें तो, संभवतः इस तरकीबसे मलेरियाका विनाश किया जा सकता है। जो हो, मैं इन दोनों तरीकोंको प्रयोग करने योग्य समझता हूँ। 'मिंट' जातिकी बूटियाँ मच्छरोंको रोकनेके लिए प्रसिद्ध हैं।"

श्री ग्रेग एक सावधान विचारक हैं। वह किसी चीजको पहलेसे ही नहीं मान लेते। उनके पत्रके अंतिम पैरेसे प्रकट होता है कि वह ब्यौरेकी बातोंका कितना ध्यान रखते हैं और कैसी व्यावहारिक प्रकृतिके आदमी हैं।

लेकिन मैं जानता हूँ कि तार्किक चिन्तनकी बड़ी-से-बड़ी मात्रा भी पृथ्वीपर अहिंसाका राज्य स्थापित न कर सकेगी। केवल एक ही चीज इस कामको कर सकती है और वह है राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करने और उसकी रक्षा करनेमें अहिंसा की सामर्थ्यको बिना किसी संदेहके प्रदर्शित कर सकनेकी भारतकी योग्यता।

हरिजन-सेवक
१५ जून, १९४०

❃

हिटलरशाहीसे कैसे पेश आयें ?

हिटलर अंतमें कैसा ही साबित हो, हिटलरशाहीका जो अर्थ बन गया है वह हम जानते हैं। इसका अर्थ है बलका नग्न और क्रूर प्रयोग जिसे ठीक विज्ञानमें घटा दिया गया है और वैज्ञानिक शोधके साथ जिसे काममें लाया जा रहा है। इसका असर लगभग अदम्य होता है।

सत्याग्रहकी शुरुआतके दिनोंमें जब कि उसे निष्क्रिय प्रतिरोध ही कहा जाता था, जोहान्सबर्गके "स्टार" पत्रको शस्त्रास्त्रसे खूब सज्जित सरकारके खिलाफ मुट्ठी भर ऐसे भारतीयोंको उठते हुए देखकर, जो निःशस्त्र ही नहीं बल्कि चाहते तो भी संगठित हिंसाके अनुपयुक्त थे, बड़ा आश्चर्य हुआ। उनपर रहम खाकर उसने एक व्यंग्य-चित्र छापा, जिसमें सरकारको अदम्य बल-सूचक स्टीम-रोलरका रूप दिया गया था और निष्क्रिय प्रतिरोधको ऐसे हाथीकी शकल दी गई थी, जो अपनी जगहपर आरामके साथ अडिग बैठा हुआ था। उसे अविचलित बल बतलाया गया था। अदम्य और अचल बलके बीच जो द्वन्द्व था उसकी बारीकीमें व्यंग्य-चित्रकार अच्छी तरह पहुँच गया। उस वक्त एक जिच पड़ी हुई थी। नतीजा जो हुआ वह हम जानते ही हैं। जिसे अदम्य चित्रित किया गया था उसका सत्याग्रहके अचल बलने, जिसे हम बदले की भावनाके बगैर कष्ट सहना कह सकते हैं, सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया।

उस वक्त जो बात सत्य साबित हुई वह अब भी उतनी ही सत्य हो सकती है। हिटलरशाहीको हिटलरशाही तरीकोंसे कभी पराजित नहीं किया जा सकेगा। उससे तो दसगुनी तेज या ऊँचे दरजेकी हिटलरशाहीका ही पोषण होगा। हमारे सामने जो कुछ हो रहा है वह तो हिंसा और हिटलरशाहीकी भी निष्फलताका ही प्रदर्शन है।

हिटलरशाहीकी असफलतासे मेरा क्या मतलब है, यह मैं बतला दूँ। इसने छोटे राष्ट्रोंको उनकी स्वतंत्रतासे वंचित कर दिया है। इसने फ्रांसको शांति-प्रार्थना करनेके लिए बाध्य किया है। जब यह लेख छपेगा, उस वक्त तक शायद ब्रिटेनको भी अपने सम्बन्धमें कुछ निश्चय कर लेना पड़े। मेरी दलीलके लिए तो फ्रांसका पतन ही काफी है। मेरे खयालमें, जो अनिवार्य था उसके आगे सिर झुकाकर और मूर्खतापूर्ण आपसी कत्लेआममें भागीदार बननेसे इन्कार करके फ्रांसीसी राजनीतिज्ञोंने असाधारण साहसका परिचय दिया है। अपना सबकुछ खोकर फ्रांसके विजयी बननेका कोई अर्थ नहीं है। स्वतंत्रताका जिन्हें उपभोग करना है उन सबका ही उसे प्राप्त करनेमें खात्मा ही जाये तो स्वतंत्रता-प्राप्तिका वह प्रयत्न उपहास्य हो जाता है। उस हालतमें वह महत्त्वाकांक्षाका निन्दनीय संतोष बन जाता है। फ्रांसीसी सैनिकोंकी वीरता विश्वविख्यात है। लेकिन शांतिका प्रस्ताव रखनेमें फ्रांसीसी राजनीतिज्ञोंने उससे भी बड़ी जो बहादुरी बतलायी है उसे भी दुनियाको जान लेना चाहिए। मेरे खयालमें फ्रांसीसी राजनीतिज्ञोंने यह मार्ग सच्चे सैनिकोंको शोभा देने लायक पूरे सम्मानपूर्ण तरीकेसे ग्रहण किया है। इसलिए मुझे आशा करनी चाहिए कि हेर हिटलर

इसके लिए कोई अपमानपूर्ण शर्तें न लगाकर यह दिखलायेंगे कि हालांकि वह लड़, निर्दयताके साथ सकते हैं, मगर कमसे कम शान्तिके लिए वह दयाहीनतासे काम नहीं ले सकते।

अब हम फिर अपनी दलीलपर आयें। विजय प्राप्तकर लेनेपर हिटलर क्या करेंगे? क्या इतनी सारी सत्ताको वह पचा सकते हैं? व्यक्तिगत रूपमें तो वह भी उसी तरह खाली हाथ इस दुनियासे जायंगे जैसे सिकन्दर गये थे, जो उनके बहुत प्राचीन पूर्ववर्ती नहीं हैं। जर्मनोंके लिए वह एक शक्तिशाली साम्राज्यकी मालिकीका आनंद नहीं, बल्कि टूटते हुए साम्राज्यको सम्हालनेका भारी बोझ छोड़ जायंगे। क्योंकि सब जीते हुए राष्ट्रोंको वे सदा सर्वदा पराधीन नहीं बनाये रख सकते, और इस बातमें भी मुझे संदेह है कि भावी पीढ़ीके जर्मन उन कार्योंमें शुद्ध गर्वानुभव करेंगे जिनके लिए वे हिटलरशाहीको जिम्मेदार ठहरायेंगे। हिटलरकी इज्जत वे प्रतिभाशाली, वीर, अनुपम संगठन-कर्ता आदिके रूपमें जरूर करेंगे। लेकिन मुझे आशा करनी चाहिए कि भविष्यके जर्मन अपने महापुरुषोंके बारेमें भी विवेकसे काम लेनेकी कला सीख जायंगे। कुछ भी हो, मेरे ख्यालमें यह तो मानना ही होगा कि हिटलरने जो मानव-रक्त बहाया है उससे संसारकी नैतिकतामें अणुमात्र भी वृद्धि नहीं हुई है।

इसके प्रतिकूल, आजके यूरोपकी हालतकी जरा कल्पना तो कीजिये। चेक, पोल, नार्वे-वासी, फ्रांसीसी और अंगरेज सबने अगर हिटलरसे यह कहा होता तो कितना अच्छा होता कि—"विनाशके लिए आपको अपनी वैज्ञानिक तैयारी करनेकी जरूरत नहीं है। आपकी हिंसाका हम अहिंसासे मुकाबिला करेंगे। इसलिए टैंकों, जंगी जहाजों और हवाई जहाजोंके बगैर ही आप हमारी अहिंसात्मक सेनाको नष्ट कर सकेंगे।"

इसपर यह कहा जा सकता है कि इसमें फर्क सिर्फ यही रहेगा कि हिटलरने खूनी लड़ाईके बाद जो कुछ पाया है वह उसे लड़ाईके बगैर ही मिल जाता। बिल्कुल ठीक। लेकिन यूरोपका इतिहास तब बिल्कुल जुदे रूपमें लिखा जाता। अब जिस तरह अकथनीय बर्बरताओंके बाद कब्जा किया गया है तब शायद (लेकिन सिर्फ शायद ही) अहिंसात्मक प्रतिरोधमें ऐसा किया जाता। लेकिन अहिंसात्मक प्रतिरोधमें सिर्फ वही मारे जाते जिन्होंने जरूरत पड़नेपर अपने मारे जानेकी तैयारी कर ली होती और वे किसीको मारे या किसीके प्रति कोई दुर्भाव रखे बगैर मरते। मैं यह कहनेका साहस करता हूं कि उस हालतमें यूरोपने अपनी नैतिकताको काफी बढ़ा लिया होता और अन्तमें, मेरा ख्याल है, नैतिकताका ही शुमार होता है। और सब व्यर्थ है।

यह सब मैंने यूरोपके राष्ट्रोंके लिए लिखा है। लेकिन हमारे ऊपर भी यह लागू होता है। अगर मेरी दलील समझमें आ जाय, तो क्या हमारे लिए यह समय ऐसा नहीं है कि हम बलवानोंकी अहिंसामें अपने निश्चित विश्वासकी घोषणा करके यह कहें कि हम हथियारोंकी ताकतसे नहीं बल्कि अहिंसाकी ताकतसे अपनी स्वतंत्रताकी रक्षा करना चाहते हैं?

हरिजन-सेवक
२२ जून, १९४०

खुश भी और रंजीदा भी

१८ तारीखको मैंने 'हरिजन'मे यह आशा प्रकट की थीः—"अगर मेरी दलील गले उतर गई है, तो क्या वक्त नहीं आ गया कि हम वीरोंकी अहिंसामे अपनी अटल श्रद्धाकी घोषणा कर दें और कह दें कि हम अपनी आजादीकी रक्षा शस्त्र-बलसे नहीं करना चाहते, हम उसकी रक्षा अहिंसक बलसे ही करेंगे।"

२१ तारीखको वर्किंग कमेटीने जाहिर किया कि मौका आनेपर वह इस श्रद्धाको अमलमे नहीं ला सकेगी। कमेटीको इससे पहले अपनी श्रद्धाको कसौटीपर कसनेका मौका नहीं आया था। पिछली बैठकमें उन्हें आनेवाली देशकी भीतरी अराजकता, और बाहरी आक्रमणके खतरेका सामना करनेका रास्ता निश्चित करना थां।

मैंने कमेटीको बहुत समझाया। अगर आप लोग शूरवीरोंकी अहिंसामें विश्वास रखते हैं, तो आज इसपर अमल करनेका मौका है। बहुतसे दल किसी प्रकारकी अहिंसामें विश्वास नहीं रखते। यही तो और भी बड़ा कारण है कि कॉंग्रेसवादी एकाएक आ पड़ी परिस्थितिका सामना अहिंसासे करे। अगर सबके-सब लोग अहिंसक रहते, तो अराजकता हो ही नहीं सकती थी और बाहरी आक्रमणका सामना करनेके लिए हथियार-बन्दीका प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। हिंसा-बलका उपयोग करनेवाले दलोंके बीचमें कॉंग्रेस ही एक ऐसा दल है जो अहिंसा माननेवाला दल है, इसलिए कॉंग्रेसवादियोंके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह दिखा दें कि वह अपनी श्रद्धापर अमल भी कर सकते हैं।

मगर वर्किंग कमेटीके सदस्योंको लगा कि कॉंग्रेस इसपर अमल नहीं कर सकेगी, इस तरह अमल करना उनके लिए एक नया ही अनुभव होगा। उनको पहले कभी ऐसी जोखमभरी परिस्थितिका सामना नहीं करना पड़ा है। कौमी फसादों वगैरा का निपटारा करनेके लिए शान्ति-सेना तैयार करनेकी मेरी योजना सर्वथा निष्फल हुई है। इस हालतमें कमेटी अब अहिंसक नीतिसे काम नहीं ले सकती।

मेरी स्थिति भिन्न थी। कॉंग्रेसके लिए अहिंसा एक नीति मात्र थी। अगर वह निष्फल हुई, तो कॉंग्रेस उसे छोड़ सकती थी। अहिंसा आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता नहीं ला सकती। कांग्रेसके लिए तो वह निकम्मी है। मेरे लिए तो अहिंसा धर्म है। मुझे उसपर अमल करना ही है, भले ही मैं अकेला रह जाऊँ। अहिंसाका प्रचार मेरे जीवनका ध्येय है, सो मुझे हरएक परिस्थितिमें उसके पीछे लगे ही रहना है। मैंने देखा कि आज ईश्वर और मनुष्यके सामने मेरी श्रद्धाकी परीक्षाका मौका है। इसलिए कमेटीके कार्यकी जिम्मेवारीसे मैंने मुक्ति मांगी। आजतक कांग्रेसकी नीतिके संचालनकी जिम्मेवारी मुझपर रही है। मगर अब, जबकि उसमें और मुझमें मौलिक अंतर पाये गये, मैं ऐसा नहीं कर सकता था। उन्होंने मान लिया कि कि मैं जो कहता था वह ठीक ही था और उन्होंने मुक्ति दे दी। उन्होंने एकबार फिर साबित कर

दिया कि जनताने उनमें जो विश्वास रखा है, वह बिल्कुल ठीक है। उन्हें यह विश्वास नहीं था कि वह खुद या जिनके वह नुमाइन्दे हैं वह इस नयी हालतमें अहिंसक नीति चला सकते हैं।

कमेटीके सामने यह भी प्रश्न था कि अहिंसाको शुद्ध समझकर जगत्‌ने उसे प्रतिष्ठा दी है। उस प्रतिष्ठाका और उनको और मुझको बांधनेवाली इन अदृष्ट चीजोंका उन्होंने बलिदान कर दिया। यह बलिदान भारी था। पर यद्यपि एक ही आदर्श या नीतिके अमलमें मतभेद पैदा हुआ है, उससे हमारी २० सालसे भी पुरानी मित्रतामें किसी तरहका फर्क थोड़े ही पड़ सकता है? मैं इस परिणामसे खुश हूँ और रंजीदा भी हूँ। खुश इसलिए कि मैं मतभेदको बर्दाश्त कर सका और ईश्वरने मुझे अकेले खड़े रहनेकी शक्ति दी। रंजीदा इसलिए कि जिनको मैं २० साल तक—जो आज एक दिनके जैसे लगते हैं—साथ रख सका, आज उन्हें साथ रखनेकी शक्ति मेरे शब्दोंमें नहीं रही। उनका साथ निभा सका यह मेरा सौभाग्य था और अभिमान भी। मैं जानता हूँ कि, अगर ईश्वरने मुझे सच्ची अहिंसाका प्रदर्शन करनेका रास्ता सुझा दिया, तो यह तारका टूटना थोड़े दिनकी ही चीज रहेगी। अगर कोई रास्ता न निकला, तो यह साबित हो जायगा कि उन्होंने जुदाईका सदमा बर्दाश्त करके भी मुझे मेरे रास्तेपर जाने दिया! वह अकलमंदी थी। मेरी किस्मतमें मेरी नपुंसकताका दुःखद ज्ञान ही लिखा है तो भी जिस श्रद्धाने मुझे इतने वर्ष टिकाया है उसे मैं छोड़ूंगा नहीं। मैं नम्रतासे समझ लूंगा कि अहिंसाकी शक्तिको और आगे लेजानेके लिए मैं पात्र नहीं था।

मगर यह दलील और यह शंका इस मान्यता पर है कि वर्किंग कमेटी कांग्रेस जनताके भावोंका प्रतिबिम्ब है। मैं जानता हूँ कि कमेटी इच्छा और आशा रखती है कि कांग्रेस जनतामें वीरोंकी अहिंसा हो। अगर उनको यह पता चले कि कांग्रेसकी शक्तिका उनका माप कम था, तो उनको अजहद खुशी होगी। सम्भावना यह है कि बहुमतमें नहीं, पर एक खासी अच्छी छोटीसी अच्छी जमातमें वीरोंकी अहिंसा है। यह याद रखा जाय कि इस बारेमें दलील नहीं की जा सकती। वर्किंग कमेटीके सदस्योंके सामने सब दलीलें पेश थीं। किंतु अहिंसा हृदयका गुण है। वह बुद्धिपर प्रहार करनेसे नहीं पैदा हो सकता। इसलिए जरूरत इस चीजकी है कि अहिंसाकी इस नयी शक्तिका शान्त मगर निश्चयात्मक प्रदर्शन किया जाय। ऐसा करनेका मौका तो हर एकके सामने लगभग हर रोज आता है। साम्प्रदायिक फसाद हैं, डाके हैं, शब्द-युद्ध हैं। जो सच्चे अहिंसक हैं वह इन सब चीजों में अहिंसाका प्रयोग करेंगे। अगर काफी मात्रामें ऐसा किया जाय, तो उसका असर आसपास पर हुए बिना रह नहीं सकता। मुझे विश्वास है कि एक भी ऐसा कांग्रेसवादी नहीं है, जो सिर्फ हठसे अहिंसा की शक्तिमें अविश्वास रखता है। जो कांग्रेसवादी मानते हैं कि अन्दरूनी फसाद और बाहरी आक्रमणका सामना भी कांग्रेसको अहिंसाके द्वारा ही करना चाहिए, वह अपने प्रतिदिनके व्यवहारमें इस चीजका प्रदर्शन करके बतायें। जिस आदमीको एक लगन लगी हुई होती है उसके छोटे-से-छोटे काममें भी वह अपनी झलक दिखाती जाती है। इसलिए जिस आदमीपर अहिंसाका आधिपत्य है, वह अपने घर-परिवारमें, पड़ोसियोंके साथके अपने व्यवहारमें, व्यापारमें, कांग्रेस-सभाओंमें, आम सभाओंमें और विरोधियोंका सामना करनेमें सब जगह

अहिंसाका प्रयोग करेगा। क्योंकि कांग्रेसवालोंने इस तरह अहिंसाका प्रयोग नहीं किया, वर्किंग कमेटी इस नतीजे पर पहुँची। उनका ऐसा कहना सही है कि कांग्रेसवाले अन्दरूनी फसाद और बाहरी आक्रमणके लिए सफल अहिंसक उपचार करनेकी तैयारी नहीं रखते। मामूली अहिंसक उपायसे जो परेशानी पैदा होती है वह स्थिर सत्ताको सार्वजनिक माँगके सामने झुकने पर मजबूर कर देती है। जाहिर है कि फसादके सामने ऐसी अहिंसा कुछ काम नहीं कर सकती। यहाँ तो हमें फसाद खड़ा करनेवालोंके प्रति हृदयमें किसी किस्मका द्वेष या गुस्सा न रखते हुए उनके हाथोंसे मर जाना है। अब तो यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जिस अहिंसाको कांग्रेसने आजतक चलाया है उससे अबकी अहिंसा बिलकुल अलग किस्मकी है। मगर यही सच्ची अहिंसा है, और यही जगतको तबाहीसे बचा सकती है ; अगर हिंदुस्तान जगतको अहिंसाका सन्देश न दे सका तो यह तबाही आज या कल आने ही वाली है। और कलके बदले आज इसके आनेकी सम्भावना अधिक है। जगत युद्धके शापसे बचना चाहता है, पर कैसे बचे इसका उसे पता नहीं चलता। यह चाबी हिन्दुस्तानके हाथमें है।

जब ऊपरका लेख लिखा और टाइप किया जा चुका था, मैंने पंडित जवाहरलालजीका बयान देखा। उसके एक-एक वाक्यसे मेरे प्रति उनका विश्वास और प्रेम टपकता है, पर इस कारण मेरे इस लेखमें कुछ तरमीम करनेकी जरूरत नहीं। अच्छा है कि पाठक यह जान लें कि हम दोनोंके मनपर कमेटीके निवेदनका स्वतंत्र असर क्या हुआ। इस जुदाईका नतीजा भला ही होगा।

हरिजन-सेवक
२९ जून, १९४०

❀

क्या किया जाय?

प्रश्न—देशकी हालत दिन-ब-दिन गम्भीर होती जा रही है। सब जगह घबराहट बढ़ रही है। कहीं-कहीं तो बदमाशोंने हथियारबन्द जत्थे बनाने भी शुरू कर दिये हैं, ताकि सरकारकी शक्ति टूट जाय या कमजोर पड़ जाय, तो उससे पैदा होनेवाली अराजकताका वह लोग फायदा उठा सकें। भले ही यह खतरा आज निकट न हो, पर इसकी संभावनापर ध्यान न देना मूर्खता होगी। आप इससे सहमत होंगे कि आजतक पिछले २० वर्षमें जितनी भी अहिंसाकी तालीम देशको मिली है, उससे ऐसी अहिंसक शक्ति पैदा नहीं हुई है कि अराजकता और गुण्डईका सफलतासे मुकाबला किया जासके। जो लोग दिशा-सूचनाके लिए आपकी ओर आँख लगाये बैठे हैं, उनका क्या धर्म हो जाता है ? क्या वह लोग सरकारकी प्रवृत्तियोंमें हिस्सा लें ? अगर नहीं तो और क्या करें ? निश्चय ही वह लोग हाथ-पर-हाथ रखकर तो नहीं बैठ सकते।

उत्तर—मैं नहीं कह सकता कि वर्किंग कमेटीके हालके बयानके बाद कांग्रेस सचमुच

क्या करेगी। अगर आप यह विश्वास रखते हैं कि अराजकता और ऐसी चीजोंका इलाज अहिंसाके द्वारा हो सकता है तो यह स्वाभाविक है कि आप अपने आपको, अपने पड़ोसियोंको और ऐसे लोगोंको जिनपर कि आप असर डाल सकते हैं, अहिंसक रक्षाके लिए तैयार करेंगे। आपका यह कहना बिलकुल ठीक है कि कोई भी जिम्मेवार आदमी आज बैठा-बैठा नहीं देख सकता। हिंसक तैयारीके लिए काफी अर्से पहलेसे तालीम लेनेकी आवश्यकता है। अहिंसाकी तैयारीमें मनको तैयार करनेका सवाल है। इसमें शक नहीं कि अराजकताकी सम्भावना है, मगर आप अहिंसक हैं, तो आप भयभीत नहीं हो जायेंगे। अराजकता आ रही है, यह मानकर नहीं बैठ जाना चाहिए। जैसे निश्चितरूपसे यह जानते हुए कि एक रोज मरना ही है, हम बैठे-बैठे सोचते नहीं रहते कि मृत्यु आ रही है। अगर बदकिस्मतीसे अराजकता आ ही जायगी, तो आप, आपके साथी और आपके अनुयायी उसे रोकनेके लिए अपने जीवनकी आहुति दे देंगे। जो लोग डाकू और बदमाश भागे जानेवालोंको मारनेका प्रयत्न करते हुए अपनी जान दे देते हैं, वह कुछ ज्यादा श्रेष्ठ काम करते हैं, ऐसी बात नहीं है। शायद वह कुछ कम ही करते हैं। वह अपनी जान खतरेमें डालते हैं और उनकी मृत्युके बाद अन्धेरा ही अन्धेरा रह जाता है। इससे भी बुरी बात है कि हिंसाका जवाब हिंसासे देकर वह हिंसाकी अग्निमें ईंधन डालते हैं। जो लोग बिना सामना किये मर जाते हैं वह अपना पूरा निर्दोष बलिदान देकर हिंसाके कोपको शान्त भी कर सकते हैं। मगर यह सच्चा अहिंसक काम तभी हो सकता है, जब आपके हृदयमें यह विश्वास हो कि चोर-डाकू, जिससे आप डरते हैं, दरअसल वह और आप एक ही हैं। इसलिए अच्छा तो यह है कि उसके हाथों आप मरें, बजाय इसके कि वह आपका अज्ञानी भाई आपके हाथों मरे।

हरिजन-सेवक
२९ जून, १९४०

अहिंसा और घबराहट

एक सज्जनने एक पत्र भेजा है। उसका नीचे दिया हिस्सा पाठकोंके लिए रोचक और बोधप्रद होगा।

"असहयोगकी पिछली हलचलमें मैंने वकालत छोड़ दी थी। १९२५के अन्तमें फिर शुरू कर दी। अब मैं कांग्रेसका सिर्फ चार आनेका मेम्बर हूँ। कचहरीमें वकालत करता हूँ और आदतन खादी पहनता हूँ। जबसे मित्र राष्ट्र हारने लगे हैं, देशमें घबराहट फैलने लगी है। ब्रिटेनकी पराजयके परिणामोंसे लोग डरते हैं, उन्हें गृहयुद्धका, साम्प्रदायिक बलवोंका, लूटमारका, आग लगाने और गुण्डाशाहीका डर है। आप अहिंसाके देवता हैं। कम-से-कम पिछले २० वर्षोंसे आपने अहिंसाका प्रचार किया है। जहाँतक मैं आपके लेखोंको समझ सका हूँ आप बहादुरोंकी

अहिंसाका प्रचार करते हैं। ऐसी अहिंसा व्यापक प्रेममेंसे ही निकलती है, वह ज्यादती करनेवालोंके प्रति और दुश्मनके प्रति भी प्रेम सिखाती है। अगर मैं सही समझता हूँ, तो आपके मतानुसार दुश्मनको नुकसान पहुँचानेकी ताकत रखते हुए भी हमें उसके साथ अहिंसक बर्ताव रखनेका प्रयत्न करना चाहिए।

"मगर आपकी इस सब शिक्षाका अमली नतीजा जो देखनेमें आता है वह यह है कि आपके अधिकांश अनुयायियोंको इस किस्मकी अहिंसाकी कल्पना ही नहीं है। वे अहिंसक हैं क्योंकि वे मानते हैं कि अगर दुर्जनका सामना हिंसासे करेंगे तो उसका कोप और बढ़ेगा। इसका नतीजा यह होगा कि वह और भी ज्यादा हिंसाका इस्तेमाल करेगा, जिसको वह झेल नहीं सकेंगे। सो उनकी अहिंसाके पीछे प्रेम नहीं, डर और बुजदिली है। विचार यह है कि अपनी जान कैसे बचायें, यह नहीं कि उच्च आदर्शके लिए उसे खतरेमें डालें। मैं एक मिसाल देता हूँ:— १९२२के असहयोगके दिनोंमें एक सज्जन थे, जिनका अब देहान्त हो चुका है। क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेंटके अनुसार वह गिरफ्तार हुए और कैद किये गये। वह एक अमन-पसन्द शहरी थे, राजनीतिमें उन्हें दिलचस्पी नहीं थी। मुझे यह आशा नहीं थी कि वह राजनीतिकी खातिर अपनी स्वतंत्रताको खतरेमें डालेंगे। उन्हें जेलमें देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने उनसे पूछा कि उन्होंने खुशीसे जेल जानेकी हिम्मत कैसे की। उन्होंने उत्तर दिया कि जेलके बाहर उन्हें ज्यादा नुकसानका डर था, उनपर छाप यह थी कि राजनीतिक हलचलके कारण सब जगह झगड़े-फसाद होंगे और उन्हें यकीन था कि आखिरमें सरकार गोली चलाने पर उतरेगी। उन्हें लगा कि जेलके अन्दर वह सुरक्षित रहेंगे और मौतसे बच जायेंगे। मेरी समझमें जब आपने लोगोंको खुशीसे जेल जानेको कहा था, तब आपके मनमें यह चीज हरगिज नहीं थी। मेरी रायमें अगर कोई कमजोरीके कारण अहिंसक बनता है तो वह आक्रमण करनेवालेका कभी सामना नहीं करेगा। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि इन घबराहट और परेशानीके दिनोंमें आपकी कलमसे निकले हुए चन्द लेख हमारे नौजवानोंके हृदयमेंसे सब डर निकाल देंगे और उनमें एक जान डाल देंगे, जिससे वह समाजमें गुंडईका सामना कर सकें। 'हरिजन'के पिछले अंकमें एक ऐसा लेख निकल चुका है। मगर मेरा मत है कि जो लोग शारीरिक शक्ति तो रखते हैं, लेकिन घबराहटसे बेजान पड़े हुए हैं उनमें हिम्मत और बहादुरी लानेके लिए एक लेखमालाकी जरूरत है। मेरी रायसे अगर आप हर हफ्ते 'हरिजन' में इस विषय पर थोड़ी-सी पंक्तियाँ लिखनेकी कृपा करेंगे तो सब भय, हड़कम्प और परेशानी अपने आप मिट जायगी। हमारी घबराहटसे गुंडोंकी हिम्मत और बढ़ रही है, जैसे ही हमारी घबराहट दूर हो जायगी हमारे समाजमें गुंडे और बदमाश भी नहीं रहेंगे।

यह पत्र सामान्य कांग्रेसवादीकी मानसिक स्थितिका सही चित्र देता है। जिस अहिंसाका लेखकने उल्लेख किया है वह कभी हमें हमारे ध्येय तक नहीं पहुँचा सकती। अगर हम इसके द्वारा शूरवीरोंकी सच्ची अहिंसा तक पहुँच सकते हैं तो मैं मानूंगा कि इस कमजोरोंकी अहिंसासे भी हमें फायदा ही हुआ है। जिसने शूरवीरोंकी अहिंसाका शस्त्र लिया है वह अकेले सारे दुनियाकी जबरदस्त-से-जबरदस्त ताकतोंका एकसाथ मुकाबला कर सकता है। हर एक कांग्रेसवालोंको अपने दिलसे पूछना चाहिए कि क्या उनमें शूरवीरोंकी अहिंसाको अपनानेकी हिम्मत है? इस आदर्श स्थितिको पानेके लिए किसी चीजकी जरूरत नहीं है सिवाय इसके

कि अपने ध्येयके खातिर अपना तन-मन-धन खतरेमें डालनेकी उनकी तैयारी हो। जो आदमी ज्यादा नुकसानसे बचनेके लिए अहिंसाके नामसे जेलमें गया, उसे अहिंसासे नुकसान ही हुआ है। मौतसे बचनेके लिए अहिंसाका आश्रय लेकर उसने अहिंसाको भी शर्मिदा किया है। यह आजादी लानेवाले लोहेके बने हुए होते हैं। यह तो एक सीधी बात है कि अगर हम बिना मारे और बिना मारनेकी इच्छातक रखे मौतका सामना कर सकते हैं तो हमने स्वराज हासिल करनेकी और उसे रख सकनेकी योग्यता पा ली।

लेखक मुझे घबराहट दूर करनेवाली एक लेखमाला लिखनेको कहते हैं। मैं कुछ भी लिखूं सिर्फ उससे घबराहट नहीं मिट सकती। मैं कह चुका हूँ कि शहरोंके लोग जो आज घबराहटके शिकार हो रहे हैं, कभी अहिंसक थे ही नहीं। जब वे लोग जेलमें गये तब भी उनके दिलमें अहिंसा नहीं थी। कांग्रेसकी सिविल नाफर्मानीके लड़ाईमें हमारे शहरोंने खासा अच्छा हिस्सा लिया था। अब उन्हें अपनी अपनी जगहपर डटे रहकर बुजदिलोंको काल्पनिक या सही खतरेसे भागनेकी लालचका सामना करनेकी हिम्मत देनी चाहिये। यह सोचना कि भागकर कोई कराल कालको धोखा दे सकेगा, मूर्खता है। हमें तो जब वह आये, उसके सामने खड़ा रहना है और उसका स्वागत करना है। मेरे मेजबान श्री घनश्यामदास जी मुझे बताते हैं कि कुछ महीने आगे एक व्यापारी परिवार,जिसने कि नोटका सोना करवा लिया था अपना सोना लेकर रेलमें जा रहा था। रेल-दुर्घटना हुई और क्षणभरमें साराका सारा परिवार समाप्त हो गया। सचमुच वह सोना उसके लिए मृत्युका फन्दा था। युद्ध हो या न हो, एक रोज तो हम सबको मरना ही है। मगर यह अनिवार्य घड़ी आनेसे पहले ही हम क्यों मर जायें ?

हरिजन-सेवक
६ जुलाई, १९४०

मुझे पश्चाताप नहीं है

हरएक अंग्रेजके प्रति यह निवेदन लिखकर मैंने एक और बोझ अपने सिरपर ले लिया है। बिना ईश्वरकी मददके मैं इसे उठानेके लायक नहीं हूँ। अगर उसकी इच्छा होगी कि मैं इसे उठाऊं तो वह उठानेकी मुझे शक्ति भी दे देगा।

मैंने अपने लेखका जब अधिकतर गुजराती में ही लिखनेका निश्चय किया, तब मुझे यह पता नहीं था कि मुझे यह निवेदन लिखना होगा। उसके लिखनेका विचार तो एकाएक ही उठा और उसके साथ-ही-साथ लिखनेकी हिम्मत भी आ गयी। कई अंग्रेज और अमेरिकन मित्र कई दिनोंसे आग्रह कर रहे थे कि मैं उनको रास्ता बताऊँ। पर मैं उनके आग्रहके वश नहीं हुआ था। मुझे कुछ सूझता नहीं था। मगर यह निवेदन लिखनेके बाद अब मुझे जो उसकी प्रतिक्रिया हो रही है उसका पीछा करना ही चाहिए। अनेक लोग मुझे

इस संबन्धमें पत्र लिख रहें है। सिवाय एक गुस्सेसे भरे तारके अंग्रेजोंने उस निवेदनको मित्रभावसे ही आलोचना की है और कुछ अंग्रेजोंने तो उसकी कद्र भी की है।

वायसराय साहबने मेरी तजवीज ब्रिटिश सरकारके सामने रखी, इसके लिये मैं उनका आभारी हूँ। इस बारेमें जो पत्र-व्यवहार हुआ है, वह या तो पाठकोंने देख लिया होगा या इस अंकमें देखेंगे। यद्यपि मेरे निवेदन के इससे बेहतर उत्तरकी आशा ब्रिटिश सरकारसे नहीं की जा सकती थी, तो भी मैं इतना कह दूं कि ब्रिटिश सरकारके विजय पानेतक लड़ते जानेके निश्चयके ज्ञानने ही मुझसे यह निवेदन लिखाया था। इसमें यह शक नहीं कि यह निश्चय स्वाभाविक है और सर्वोत्तम ब्रिटिश परम्पराके योग्य भी है। मगर इस निश्चयके अन्दर भयानक हत्याकांड निहित है। इस चीजके जानते हुए लोगोंको अपने ध्येयकी प्राप्तिके लिए कोई बेहतर और ज्यादा वीरतापूर्ण रास्ता ढूंढना चाहिये, क्योंकि शान्तिकी विजय युद्धकी विजयसे अधिक प्रभावशाली होती है। अंग्रेज अहिंसक रास्ता अख्तियार करते, तो उसका अर्थ यह नहीं था कि वह चुपचाप निन्दनीय तरीकेसे जर्मनीके सामने झुक जाते। अहिंसाका तरीका शत्रुको हक्का-बक्का बनाकर रख देता और युद्धकी सारी आधुनिक कला और चालबाजियोंको निकम्मा बना देता। नया विश्वतंत्र भी, जिसका कि आज सब स्वप्न देख रहे हैं, इसमेंसे निकल आता। मैं मानता हूँ कि अन्ततक युद्ध लड़कर अथवा दोनों पक्ष अन्तमें थकानके मारे कैसी भी कच्ची-पक्की सुलह कर लें, उसमेंसे नया विश्व-तंत्र पैदा करना असम्भव है।

अब एक मित्रने अपने पत्रमें जो दलीलें पेश की है उनको लेता हूँ:—

"दो अंग्रेज मित्र, जो आपके प्रति बहुत आदर-भाव रखते हैं, कहते हैं कि आपके हर एक अंग्रेजके प्रति लिखे निवेदनका आज कोई असर नहीं हो सकता। आम जनतासे यह आशा नहीं रखी जा सकती कि वह एकदम अपना रुख बदल ले और समझके साथ ऐसा करे। सच तो यह है कि जबतक अहिंसामें हार्दिक विश्वास न हो, बुद्धिसे इस चीजको समझना अशक्य है। जगतको आपके ढांचेमें ढालनेका वक्त तो युद्धके बाद आयेगा। वह समझते हैं कि आपका रास्ता सही रास्ता है, मगर कहते है कि उसके लिए बेहद तैयारी की, शिक्षा की और भारी नेतृत्वकी जरूरत है, और उनके पास आज इनमेंसे एक भी ऐसी चीज नहीं है। हिन्दुस्तानके बारेमें वह कहते हैं कि सरकारका ढंग शोचनीय है। जिस तरह कनाडा आजाद है, उसी तरह हिंदुस्तानको भी बहुत अर्सा पहले आजाद कर देना चाहिए था, और हिंदुस्तानके लोगोंको अपना विधान खुद बनाने देना चाहिये। मगर जो बात उनकी समझमें नहीं आती वह है हिन्दुस्तानकी आज तुरंत स्वतंत्रताकी माँग। दूसरा कदम यह होगा कि ब्रिटेनको लड़ाईमें मदद न देना, जर्मनीके सामने झुकना और फिर अहिंसक तरीके से उसका सामना करना। इस गलतफहमीको दूर करनेके लिए आपको अपना अर्थ ज्यादा तफसीलसे समझाना होगा। यह एक सच्चे आदमीके दिलपर हुआ असर है।"

यह निवेदन आज असर पैदा करनेके हेतुसे लिखा गया था। वह असर हिसाब

करके, तोलमापके जरिये पैदा नहीं हो सकता था। अगर दिलमें यकीन हो जाता कि मेरा रास्ता सही रास्ता था, तो उसपर अमल करना आसान था। जनताके उपर दबावके वक्त असर होता है। मेरे निवेदनका असर नहीं हुआ। इससे जाहिर होता है कि या तो मेरे शब्दोंमें शक्ति नहीं या ईश्वरकी ही कुछ ऐसी इच्छा है कि जिसका हमें कुछ पता नहीं। यह निवेदन व्यथित हृदयसे निकला है। मैं उसे रोक नहीं सकता था। यह निवेदन केवल उसी क्षणके लिये नहीं लिखा गया था। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उसमें बताया गया सत्य शाश्वत है।

अगर आजसे भूमिका तैयार न की गयी, तो युद्धके अन्तमें जब चारों ओर खिन्नता और थकानका वातावरण होगा नया तंत्र बनानेका समय ही नहीं रह जायगा। नया तंत्र जो भी होगा वह जाने-अनजाने आजसे हम जो भी प्रयत्न करेंगे, उसीका परिणाम होगा। दर-असल, प्रयत्न तो मेरा निवेदन निकलनेसे पहले ही शुरू हो चुका था। आशा है कि निवेदनने उसे उत्तेजन दिया होगा और एक निश्चित दिशा दिखाई होगी। मेरी गैर अधिकारी नेताओं और ब्रिटिश प्रजाका मत ढालनेवालोंको सलाह है कि यदि उन्हें यकीन हो गया है कि मेरा रास्ता सही है, तो वे उसे स्वीकार करानेका प्रयत्न करें। मेरे निवेदनने जो महान प्रश्न उठाया है, उसके सामने हिन्दुस्तानकी आजादीका प्रश्न तुच्छ बन जाता है। मगर मैं इन दो अंग्रेज मित्रोंके साथ सहमत हूँ कि ब्रिटिश सरकारका ढंग शोचनीय है। लेकिन इन मित्रोंने हिन्दुस्तानकी आजादीकी कल्पना करके उसके जो नतीजे निकाले हैं, वह सरासर गलत है। वह भूल जाते हैं कि मैं इस चित्रसे बाहर हूँ। जिनके सिरपर कार्य-समितिके पिछले प्रस्तावकी जिम्मेवारी है, उनकी धारणा यही रही है कि स्वतंत्र हिन्दुस्तान ब्रिटेनके साथ सहयोग करेगा। उनके पास जर्मनीके आगे झुकने या अहिंसक तरीकेसे सामना करनेका प्रश्न ही नहीं उठता।

मगर, यद्यपि विषय दिलचस्प और ललचाने वाला है, तो भी मुझे हिन्दुस्तानकी आजादी और उसके फलितार्थोंका विचार करनेके लिए यहाँ नहीं ठहरना चाहिये।

मेरे सामने इस भावके पत्र और अखबारकी कतरनें पड़ी हैं कि जब कांग्रेसने हिंसक फौजके जरिये हिन्दुस्तानकी रक्षाकी तैयारी न करनेकी आपकी सलाह नहीं मानी, तो आप अंग्रेजोंको यह सलाह कैसे दे सकते हैं और उनसे कैसे आशा रख सकते हैं कि वह इसे स्वीकार करेंगे? यह दलील देखनेमें ठीक मालूम देती है, मगर सिर्फ देखनेमें ही। आलोचक कहते हैं कि जब मैं अपने लोगोंको ही न समझा सका, तो मुझे यह आशा रखनेका कोई हक नहीं है कि आज जीवन और मौतकी लड़ाईके मँझधारमें पड़ा ब्रिटेन मेरी बात सुनेगा। मेरा तो जीवनमें एक खास ध्येय है। हिन्दुस्तानकी करोड़ोंकी जनताने अंग्रेजोंकी तरह युद्धके कड़वे स्वाद नहीं चखे। ब्रिटेनने जिस मकसदकी दुनियाके सामने घोषणा की थी, अगर उसे हासिल करना है तो उसे अपनी नीति बिलकुल बदल देनी होगी। मुझे ऐसा लगता है जैसे जानता हूँ कि क्या परिवर्तन करनेकी जरूरत है। जिस विषयकी यहाँ चर्चा हो रही है, उसमें मेरी कार्य-समितिको न समझा सकनेकी बात लाना असंगत है।

ब्रिटेन और हिन्दुस्तानकी परिस्थितिमें कोई साम्य ही नहीं है। इसलिये, मुझे वह निवेदन लिखनेपर जरा भी पश्चाताप नहीं है। मैं इस बातपर कायम हूं कि निवेदन लिखनेमें मैंने ब्रिटेनके एक आजीवन मित्रका काम किया है।

एक लेखक प्रत्युत्तरमें लिखते हैं:—"हेर हिटलरको अपना निवेदन भेजो न!" पहली बात तो यह है कि मैंने हेर हिटलरको भी लिखा था। मेरे पत्र भेजनेके कुछ समय बाद वह पत्र कुछ अखबारोंमें छपा भी था। दूसरी बात यह है कि हेर हिटलरको मेरा अहिंसक रास्ता अख्तियार करनेके लिए कहना कुछ अर्थ नहीं रखता। हेर हिटलर विजयपर विजय प्राप्त कर रहे हैं। उनसे तो मैं यही कह सकता हूं कि अब बस करो। वह मैं कह चुका हूँ। मगर ब्रिटेन आज अपनी रक्षाके लिए लड़ रहा है। उसके आगे मैं अहिंसक असहयोगका सचमुच प्रभावकारी शस्त्र रख सकता हूँ। मेरा रास्ता ठुकराना हो तो उसके गुण-दोषोंका विचार करके ठुकराया जाय, अनुचित तुलनाएँ करके या लूली-लँगड़ी दलीलें पेश करके नहीं। मैं समझता हूँ कि मैंने जो सवाल उठाया है वह सारे संसारके लिए महत्त्व रखता है। अहिं-सक रास्तेकी उपयोगिताको सब आलोचक स्वीकार करते हैं। मगर वह खामखाह मान लेते हैं कि मनुष्य स्वभाव ऐसा बना है कि वह अहिंसक तैयारीका बोझ नहीं उठायेगा। लेकिन यह तो प्रश्नको टालनेकी बात है। मैं कहता हूँ कि आपने यह तरीका अच्छी तरह आजमाया ही नहीं है। जहाँ तक यह आजमाया गया है परिणाम आशाजनक ही आया है।

हरिजन-सेवक
२७ जुलाई, १९४०

❀

पाकिस्तान और अहिंसा

प्रश्न—एक गुजराती मुसलमान भाई लिखते हैं—

"मैं अहिंसाको हूँ मानता हूँ और पाकिस्तानको भी मानता हूँ। अब पाकिस्तानके लिए अहिंसक रीतिसे किस तरह काम करूँ?"

उत्तर—जिस वस्तुमें न्याय नहीं है वह अहिंसक रीतिसे प्राप्त नहीं की जा सकती जैसे चोरी अहिंसक रीतिसे नहीं की जा सकती। जिस तरह पाकिस्तानको मैं समझा हूँ, उस तरहसे वह न्यायमुक्त नहीं है। मगर आप उसे न्याययुक्त मानते हैं, इसलिये आप उसके लिए आन्दोलन जरूर कर सकते हैं। यदि आप यह अहिंसक रीतिसे करेंगे, तो पहले जो पाकिस्तानका विरोध करते हैं, उन्हें आपको समझाना चाहिये। आप इस बारेमें निःस्वार्थ भावसे काम करते हैं, ऐसी छाप लोगोंपर पड़नी चाहिए। विरो-धियोंका कहना आदरपूर्वक सुनना चाहिये और उनकी भूल हो तो आदरपूर्वक बतानी

चाहिये। अन्तमें मान लीजिये कि लोग आपकी नहीं सुनते और आपके इस मामलेकी सचाईके बारेमें आपकी मान्यता कायम रहती है, तो जो लोग आपके रास्तेमें विघ्न डालते है, उनके खिलाफ आप अहिंसक असहयोगका प्रयोग कर सकते हैं। ऐसा करते हुए आप विरोधीको नुकसान नहीं पहुँचायेंगे, नुकसान पहुँचानेकी इच्छा नहीं करेंगे और आपको नुकसान होता हो तो उसे आप सहन कर लेंगे। आपका मामला तटस्थ जब रीतिसे उचित माना जाता होगा, तभी यह सब संभव होगा।

हरिजन-सेवक
३, अगस्त १९४०

इसमें हिंसा है

ऐसा श्री सुरेन्द्रजी बोरीयावसे लिखते हैं—

'दुःखी इसलिए कि इतने वर्षोंसे जिनको मैंने अपना कथन समझता रहा, जिन्हें साथ लेकर चलनेका गौरवपूर्ण लाभ मुझे प्राप्त हुआ, उन्हें समझा सकनेकी शक्ति आज मेरे शब्दोंमें गोया नहीं रही, और इतने वर्षोंका प्रेम-भरा सम्बन्ध मानों कलकी बात हो गयी है'—यह वाक्य आपके लेखमें पढ़कर मुझे दुःख और आश्चर्य हुआ। आपके इस वाक्यमें क्या हिंसा नहीं है. ?"

मेरी कलमसे ऐसा वाक्य निकल ही नहीं सकता, यह मैंने मान लिया और इस प्रकारका उत्तर भी दे दिया, क्योंकि इस तरह विचार तक रखनेमें हिंसा है। सरदारके साथ तो क्या, किसीके भी साथ मेरी प्रेमकी गाँठ नहीं टूट सकती। दुश्मनके प्रति भी प्रेम विकसित करनेकी शिक्षा देनेवाला मैं सरदार-जैसे साथियोंके साथ बँधी प्रेम-गाँठको भला कैसे तोड़ सकता हूँ? मालवीयजी, शास्त्रीजी जैसोंके साथ मेर मतभेद तो रहा ही है, तो भी उनके साथ मेरा प्रेम-संबन्ध जैसा था वैसा ही चलता आ रहा है। मतभेद होनेपर यदि प्रेम सम्बन्ध टूट जाय तो वह असहिष्णुताकी निशानी है।

इसलिए सुरेन्द्रजीका पत्र पढ़कर मैंने "हरिजन-बन्धु" पढ़ा। मैंने देखा कि मेरे 'हरिजन' के लेखका यह तर्जुमा है। असल लेख पढ़ा तो देखा कि मेरा वचन तो सर्वथा निर्दोष और अवसरके अनुसार है। "यह सब वर्षोंका प्रेम-संबन्ध मानो कलकी बात हो गई," ऐसा अर्थ अंग्रेजीमें है ही नहीं। अंग्रेजीका अर्थ तो इतना ही है कि "यह सब वर्ष मानों कल-के-से हो गये।" उसके ऊपर ही कहा जा चुका है कि 'बीस वर्षसे भी ऊपरकी हमारी मैत्रीमें कुछ फर्क नहीं पड़ा।" इसलिए मुझे दुःख संबन्ध टूटनेका नहीं, बल्कि मेरे शब्दोंमें जो शक्ति कलतक थी, वह एकाएक चली गयी उसका था, और है। प्रेम है, मगर साथियोंको फिरसे जीत सकनेकी शक्ति अपने शब्दोंमें प्राप्त करनेके लिए मुझे तपश्चर्या

करनी चाहिए। इस लेखकी ध्वनि ही शुरूसे आखिरतक मिठास बनाये रखनेकी है। दूसरा मुझसे हो ही नहीं सकता था।

परन्तु यह दोषमय तर्जुमा अकस्मात बताता है कि मैंने जो गुजरातीमें लिखनेका निश्चय किया है वह हर तरहसे ठीक ही है। चाहे कितना ही शक्तिशाली मनुष्य तर्जुमा करे फिर भी उसमें दोषोंका रह जाना सम्भव है। बाइबलका तर्जुमा चालीस बयालीस विद्वानोंने इकट्ठा किया था, तब भी उसमें भूलें चाहे थोड़ी ही सही मगर, रह तो गयी ही हैं। प्रेम-गाँठ तो जैसी है, वैसी ही कायम रहेगी। समय बल्कि उसे ज्यादा मजबूत कर देगा। पर इससे क्या? इतना तो स्पष्ट है ही कि कितना भी समझानेपर, बहुत महत्त्वकी बातमें हमारा मार्ग अलग पड़ गया है। ज्यों-ज्यों मैं विचार करता हूँ, त्यों-त्यों देखता हूँ कि काँग्रेस अपने मार्गसे नीचे उतर गयी है। उसके पास जो मूलधन था, वह उसने खो दिया है। यह कहा जा सकता है कि यह मूलधन काँग्रेसके पास था ही नहीं, इसलिए उसे खोना क्या था? काँग्रेसकी अहिंसा तो स्थापित सरकारके साथ लड़ने तक ही परिमित थी। बाकी क्षेत्रोंके विषयमें तो काँग्रेसने कभी निर्णय किया ही नहीं था, करनेका अवसर ही नहीं था। व्यक्तिगत बचाव करनेकी छूट तो काँग्रेसने गयामें ही दे दी थी। इन दलीलोंके लिए स्थान तो है, मगर मैं देखता हूँ कि काफी संख्यामें काँग्रेस-वादी यह मानते हैं कि अहिंसाके गर्भमें ऊपरके क्षेत्र आ ही जाते हैं। उसके बिना अहिंसा बिना सिरके धड़की तरह निर्जीव मानी जायगी। मगर जहाँ हृदयकी वीणा बज रही हो, वहाँ चाहे किसी भी पक्षकी दलीलोंका शब्द-जाल हो, उससे क्या फायदा?

ऐसी विषम स्थितिमें सरदार आदिने जो मार्ग ग्रहण किया है, वह उनके लिए शोभाप्रद है, क्योंकि उनका हृदय उन्हें प्रेरणा कर रहा है। सरदार भाषणकर्त्ता नहीं, कार्यकर्त्ता हैं। उनमें जो कुशलता है उसके अनुसार बिना आगा-पीछा देखे अपने काममें मस्त रहते हैं, और सदा रहे।

मेरा मार्ग मेरे सामने स्पष्ट है। मगर जो लोग आजतक हम दोनोंको एक समझकर काम करते आये हैं, वे क्या करें? उनकी स्थिति कठिन जरूर है। उनकी अहिंसा उनकी आत्मामें ओत-प्रोत न हुई हो, सिर्फ मेरी अहिंसाके आधारपर निभती हो, तो उनका धर्म है कि सरदारके पीछे चलें। सरदार मार्ग भूले हैं, ऐसा मैं मानता हूँ, या यों कहिये कि मेरे मार्गपर चलना उनकी शक्तिसे बाहर है। मेरी सम्मतिसे, मेरे प्रोत्साहनसे उन्होंने यह अलग रास्ता अख्तियार किया है। इसलिए जिनके मनमें शंकाको स्थान है, उन्हें सरदारके पीछे ही चलना चाहिए। मैं मानता हूँ कि सरदार अपनी भूल देखेंगे, या जो शक्ति उनमें नहीं है, ऐसा वह मान बैठे हैं, वह शक्ति जब उनमें आ जायगी, तब वह फिर मेरा रास्ता ग्रहण करेंगे। जब वह सुअवसर आयेगा, तब दूसरे सरदारके साथ मेरे मार्गपर आयेंगे। ऐसा करनेमें उनकी सुरक्षितता है।

मगर जिनके मनमें अपने मार्गके विषयमें शंका ही नहीं, जिन्होंने अहिंसाको अपना

लिया है और सब संकटोंमें सिर्फ अहिंसा-रूपी शस्त्रके द्वारा ही जिन्हें रक्षा करनी है, उनको चुपचाप कांग्रेससे निकल जाना चाहिए। अगर वे सच्चे अहिंसक होंगे, तो कांग्रेसमें दो पक्ष नहीं होने देंगे। कांग्रेसमेंसे निकल गये, तो दो पक्ष पड़नेकी बात ही कहाँ रही? कांग्रेससे निकलकर भी वह प्रतिपक्षी नहीं बनेंगे। कांग्रेसके अनेक अहिंसक कार्योंमें जहाँ सरदार मदद माँगेंगे, वहाँ मदद देंगे और जहाँ हुल्लड़ वगैरा होता होगा, वहाँ वह यथाशक्ति मर मिटनेका प्रयत्न करेंगे। मेरी कल्पनाका एक छोटा-सा भी सत्याग्रही-मंडल बने तो वह इष्ट है और बनना चाहिए और मैं मानता हूँ कि वह लोग अहिंसाका झंडा अखंड फहराता हुआ रख सकेंगे। इतना ही नहीं, बल्कि कांग्रेसवादियोंके हृदयपर भी उसका असर डाल सकेंगे। बहुतसे कांग्रेसियोंकी इच्छा तो है ही कि सब क्षेत्रोंमें अहिंसापर अमल हो, पर वह सम्भव है या नहीं इस बारेमें उन्हें शंका है। इस शंकाका निवारण करना मेरा और मेरे सहधर्मियोंका कर्त्तव्य है।

हरिजन-सेवक,
३ अगस्त, १९४०

